इकाइयाँ

और

परछाइयाँ

इकाइयाँ और परछाइयाँ

सम्पादक

डॉ. सुदर्शन मजीठिया

तथा

शेखर जैन

क म ल प्र का श न

५४, प्रिन्स यशवन्त रोड़ इन्दौर ४५२००४

फोन : 31344

इकाइयाँ और परछाइयाँ

सम्पादक
डॉ. सुदर्शन मजीठिया
तथा
शेखर जैन

क म ल प्र का श न
५४, प्रिन्स यशवन्त रोड़ इन्दौर ४५२००४
फोन : 31344

प्रकाशक
कमल प्रकाशन
इन्दौर

मूल्य 8.00

मुद्रक : विमल मुद्रायन, इन्दौर

उन कहानीकारों को
जो कहानी के नाम पर
कहानी के अतिरिक्त 'सब-कुछ'
लिखते हैं ।

अनुक्रम

प्रस्तुत कहानी संग्रह

आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व, विदेश जाने से पहले, राजकोट में बातों के सिलसिले में मजीठियाजी ने सुझाव दिया था कि क्यों न गुजरात प्रदेश के हिन्दी कहानीकारों की हिन्दी कहानियों का एक प्रतिनिधि संकलन तैयार किया जाए। योजना दो एक साहित्यिक मित्रों को पसंद आई। जब इस योजना की चर्चा गुजरात के अन्य साहित्यिक मित्रों से की गई तो उन्होंने भी इसे पसन्द किया।

समय-समय पर हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में गुजरात के कितने ही हिन्दी लेखकों की रचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। अतएव विचार यही था कि प्रस्तुत संग्रह के माध्यम से गुजरात प्रदेश के इन हिन्दी साहित्यकारों की कहानियों को हिन्दी संसार के समक्ष एक स्थान पर प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। साथ ही इन कलाकारों को एक प्लेटफार्म पर एकत्रित होने का अवसर भी मिलेगा। इस प्रदेश से कम से कम यह अपने प्रकार का प्रथम संकलन है। गुजरात से हिन्दी पुस्तकों व पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन समुचित मात्रा में नहीं हो पाता अतएव गुजरात के इन साहित्यकारों एवं हिन्दी संसार के अन्य लेखकों के बीच एक फासला-सा है। आदान-प्रदान के इस सिलसिले में यदि गुजरात के इन साहित्यकारों का किसी हिन्दी प्रदेश से थोड़ा बहुत व्यावहारिक संबन्ध है, तो वह केवल राजस्थान से। शायद इसका एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि गुजरात के अधिकतर प्रमुख हिन्दी प्राध्यापक राजस्थानी ही हैं।

इस संग्रह को प्रकाश में लाने हेतु जिन साहित्यकारों ने इस संग्रह के लिए अपनी कहानियां दी हैं, वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके अतिरिक्त हम उन कहानीकारों को भी धन्यवाद देते हैं:—

१. जिन्होंने सहयोग का लम्बा-चौड़ा आश्वासन देकर मौन रहना उचित समझा ।

२. जिन्हें इस संग्रह के लिए कहानी देकर इसलिए पछतावा हुआ क्योंकि उनकी कहानी को उनके 'विरोधी' की रचना के साथ स्थान दिया गया ।

३. जिन्हें इस बात की शिकायत रही कि मात्र अमुक लोगों की ही रचनाओं को इस संग्रह में क्यों नहीं स्थान दिया गया ।

इस संग्रह के विषय में पाठकों की प्रतिक्रिया जानकर संपादकों को प्रसन्नता ही होगी ।

स्वामीनारायण कालेज,
अहमदाबाद

—शेखर जैन

————

बीस साल बाद

आज समस्त राष्ट्र विघटन से पीड़ित है। बौद्धिकता अपराधी वृत्तियों को उकसा रही है। विकसित देशों में तो यह प्रवृत्ति और भी विकास की ओर है। सभ्यता की इस चका-चौंध में यौन की उच्छृंखलता, अप्राकृतिक व अमानुषिक वातावरण, हिंसक तथा वैधानिक उल्लंघन के साथ अपराधों की संख्या में विकास, जुलूस, हड़ताल, नारेबाजी, घिराव तथा बंध आदि दैनिक प्रक्रिया के अंग से हो गए हैं। नैतिक मूल्यों का विघटन भले ही समाज का, आनेवाले युग में एक दूसरा ही मानदंड उपस्थित करे परन्तु आज तो हर क्षेत्र एक प्रकार की अराजकता व अनुशासन हीनता से पीड़ित है। इन सबके ऊपर है देश का आर्थिक तंत्र जो टूट चुका है। जब राष्ट्र का आर्थिक तंत्र ही डाँवाडोल हो जाए तो फिर भला रह क्या गया ? वस्तुओं की कीमतों में क्षणिक ठहराव आया और कुछ गिराव भी। परन्तु पिछले तीन चार बर्षों में वस्तुओं की कीमतें जिस अनुपात से बढ़ी थीं, उस अनुपात में कीमतों में गिरावट नहीं हुई। गुजरात जैसे प्रदेशों में तो बाढ़ के बाद गिरती हुई कीमतों में जैसे सहसा ब्रेक लग गया। कीमतों को चढ़ने का एक बार और मौका मिला। राष्ट्र का विदेशी विनिमय अत्यंत डाँवाडोल स्थिति में है। विदेशों में इस देश की स्वातंत्र्योत्तर जो छाप पड़ी थी, धीरे-धीरे मिट रही है। विदेशी भारत को केवल एक ऐसा राष्ट्र समझते हैं जो भुखमरी और अन्नाभाव से पीड़ित है। हम पर हर विदेशी राष्ट्र का ऋण है। इससे राष्ट्र के आत्मसम्मान को कितना धक्का लगा है ?

राजनैतिक पार्टियों में सत्ता प्राप्त करने की होड़ लगी है। जनता के हितों के नाम पर समस्त पार्टियाँ घोर स्वार्थ लिप्सा में रत हैं। कांग्रेस

से ऊबकर जनता ने विरोधी पक्षों को वोट दिए। अधिकतर प्राँतों से कांग्रेस का शासन चला गया। परिणाम स्वरूप विरोधी पक्षों ने अधिक गैर जिम्मेदारी व अयोग्यता के ज्यादा अच्छे प्रमाण प्रस्तुत किए। कांग्रेस में अस्थायित्व व अस्थिरता के दर्शन हुए। इतिहास की यह भी एक प्रक्रिया थी। यह भी एक प्रकार की क्रांति थी। कांग्रेस को अपनी योजनाओं पर, अपनी थोथी दलीलों पर एक बार पुनर्विचार करने का इतिहास में शायद अंतिम अवसर मिला है। प्रशासन की ओर से जो विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत किए जाते हैं, जनता में उनकी प्रतिक्रिया ठीक विपरीत ही होती है। इसका नवीनतम उदाहरण भाषा विधेयक है। प्रशासन की ओर से परस्पर विरोधी वर्गों को प्रसन्न रखने के लिए राष्ट्रोन्नति के बुनियादी सिद्धान्तों की ही बलि दे दी गई। पंचशील व भावात्मकता के थोथे नारों के बावजूद ठोस वास्तविकता तो यह थी कि देश के टुकड़े होते ही चले गए। टूटने की इस प्रक्रिया का कहीं अंत नहीं नजर आता। राष्ट्र नामक वस्तु केवल नक्शे पर ही रह गई है। इस टूटे देश का हर आदमी टूटा हुआ है, उखड़ा हुआ है। पुरानी मान्यताएँ और परंपराएँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। जीवन के चले आते मूल्य टूट गए हैं। इन टूटे हुए मूल्यों को नवीन मूल्यों ने स्थानांतरित नहीं किया, परिणाम है अनिश्चितता। इस टूटे हुए राष्ट्र का टूटा हुआ आदमी अनिश्चय के चौराहे पर खड़ा है। सामने एक भीषण प्रश्न चिह्न है—कौन उत्तर देगा, या दे सकता है ?

प्रश्न एक नहीं, कई हैं। लोग पूछते हैं कि इस प्रजातंत्र का क्या होगा ? जनतांत्रिक भविष्य की संदिग्धता का उत्तर क्या तानाशाही की सफलता में मिलेगा ? इस अराजकता के बीच साम्यवादी अपनी भावी क्रान्ति के विकास के बीज ढूंढने में व्यस्त हैं। संगीन की नोकों पर वे चीन के रास्ते भारत को भी ले जाना चाहते हैं। आज लोगों को अपने अधिकारों का स्मरण हो आया है, हर व्यक्ति अपने हक की, अधिकार

की बात करता है; परन्तु हर अधिकार के पीछे एक उत्तरदायित्व होता है, एक जवाबदारी होती है। उसकी कोई बात भी नहीं करता। इस अनुशासन हीनता, वैचारिक असहिष्णुता एवं मिथ्या प्रचार से सारा राष्ट्र पीड़ित है। प्रशासक वर्ग की अनिश्चित योजनाएं, अधिकार प्राप्त प्रशासकीय अधिकारियों का दुराचरण, राष्ट्रीय सम्पत्ति का क्षय, तथा राजनैतिक उपद्रवों के कारण राष्ट्रीय जीवन अरक्षित हो उठा है। अनास्था, कुंठा, नैराश्य, संशय व अवसाद का धुआं जीवन के हर क्षेत्र में भरता चला जा रहा है। सामान्य एवं मध्यवर्गीय मनुष्य का जीवन संघर्षमय एवं कुंठामय हो गया है। एक वर्गचेतना पनप रही है। भावुकता का स्थान बौद्धिकता व उपयोगितावाद ने ले लिया है। जीवन के हर क्षेत्र में तनाव बढ़ रहे हैं। इन तनावों की प्रतिच्छाया में ही हम जी रहे हैं। ये तनाव हमारी भावनाओं पर हावी हो गए हैं। हम इन विविध तनावों के साये में जहां एक ओर, इन सबका बोझ ढोकर अपने आपको गतिशील मानकर स्वयं को छलने का प्रयास कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर अधुनातन यांत्रिक विस्मय जगत के शाश्वत सत्यों में आमूल परिवर्तन कर रहे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी—आधुनिकता के परिवर्तित मूल्यों ने जहां एक ओर हर किसी को आलोड़ित किया तो वहीं दूसरी ओर उसने हिन्दी कहानीकार की संवेदना को उभाड़ने का भी विशेष प्रयास किया। अधिकतर अनुभूति के अभाव में, असाध्य स्थितियों के कारण तटस्थ भाव से देखकर उसने अपनी रचनाओं में मात्र बौद्धिक सहानुभूति ही व्यक्त की है। उसमें व्यथा है, अनास्था है, आक्रोश है। वह आखिर क्या करे ? कुंठा की अभिव्यक्ति ही यदि निंदनीय है तो आखिर उसकी उपलब्धि क्या ? कुंठाएं तो अमुक प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। उसका कारण, उसका उद्गम, उसका स्रोत तो कहीं और है। यह स्थिति तो उसकी विवशता है। यह उसकी ऐसी मजबूरी है जिससे छुटकारा पाने के प्रयास में ही

वह कहानी लेखन को ले बैठा है। हिन्दी नव लेखन इन्हीं संकटों से ग्रस्त है। उसमें आज जो बौद्धिकता, व्यक्तिवाद, नैराश्य, विक्षोभ, अतिबुद्धिवाद, समाजवाद्र तथा भीड़वाद की जो प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं, वे साभिप्राय हैं—आरोपित नहीं। यह है जीवन का यथार्थ बोध। इसी युगबोध के संदर्भ में विविध शिल्पों में नई कहानी, सचेतन कहानी व अ-कहानी के कहानी संप्रदाय विकास की विविधमुखी दिशाओं की ओर गतिमान हुए हैं।

इस अधुनातन कहानी में जो भावबोध व्यक्त हुआ है, उसे युगजीवन की पृष्ठभूमि पर अन्तर्घटित किया जा सकता है। इस दशक के कहानीकारों की समस्याएँ पिछले दशक के कहानीकारों से भिन्न हैं। विगत दशक की कहानियों में जो कुंठा, अनास्था व नैराश्य है, उसका कारण प्रशासनिक अव्यवस्था तथा सामाजिक आराजकता है। संवेदनशील कहानीकार के मन में अंधकार छाया है। उसकी पीड़ित आत्मा का विवेक जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्रगट हुआ है। टूटी-फूटी अनुभूतियों का संयोजन कर उसने मानव मूल्यों से संघर्ष आरंभ किया। मानव-प्रकृति विकासशील है। इसलिए नए कहानीकारों के एक वर्ग ने अपने गत्यावरोध को पहिचान कर अपने आपको विकासशील बनाने का उपक्रम किया। उन्होंने एक नया संप्रदाय चला कर अपने आपको विकासशील बनाने का उपक्रम किया। अपनी कहानियों में गत्यात्मकता का आरोहण करने के लिए उन्होंने लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ प्रस्तुत कीं।

नई कहानी—यह संप्रदाय था 'नए कहानीकारों' का जिनका दावा था कि वे 'नई कहानी' के जनक है और हिन्दी का यह युग नई कहानियों का है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने विकास की जितनी भी विविध मुखी दिशाएं प्रदान कीं उतना ही विभिन्न कहानी संप्रदायों का विवाद सामने आया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी को इस प्रकार संप्रदायों में बाँटकर देखना—नई कहानी, अकहानी और सचेतन कहानियों के चौखटों

में फिट करना उसके प्रति भारी अन्याय करना होगा। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी पिछले दो दशक की कहानी है। दोनों दशक की समस्याएँ अपनी हैं। दूसरे दशक की कहानी पहले दशक की कहानी से गतिशील है। भाग्यवश हिन्दी कहानी नई कविता की अराजकता के दर्शन से पीड़ित नहीं है। वह विश्वास की भावभूमि पर प्रस्थापित है।

इन दो दशकों में प्रचलित विभिन्न कहानी संप्रदायों में सर्वाधिक उलझन का कुहासा नए कहानीकारों ने तथा उनके चारण आलोचकों ने फैलाया है। पहले दशक की नई कहानी के कहानीकारों की यह पीढ़ी 'एय्याश प्रेतों का विद्रोह' के माध्यम से जीवित रहना चाहती है। इससे गुटबाजी को ही प्रश्रय मिला है। ये कहानीकार स्वयं मानते हैं कि हिन्दी कहानियों के इस विवाद से सामान्य पाठक भी एक तरह की 'एलर्जी' का अनुभव करने लगा है। यह विवाद साभिप्राय है। इसके अभाव में नए कहानीकार भी अपने अस्तित्व और महत्व को भलीभाँति पहचानते हैं।

एक विशिष्ट भावबोध से प्रेरित आधुनिक युगबोध के संदर्भ में नई कहानी की चर्चा परिचर्चा—नई कहानी के नाम पर मात्र प्रेरित की गई हैं। नये कहानीकारों के नाम पर अमुक कहानीकारों का ही गुट अपने को नई कहानियों का जनक मानकर परस्पर यशोगान में लिप्त है। अ, ब की प्रशस्ति लिखता है, ब लिखता है स की प्रशस्ति और बदले में स. अ की प्रशस्ति लिखता है। इस प्रकार ये एक दूसरे के हमदम हैं। एक दूसरे की श्रेष्ठ कहानियों का संपादन करते हैं। इनका संप्रदाय समस्त हिन्दी संसार में फैला है। इतना ही नहीं बल्कि यह संप्रदाय प्रभावशाली भी है। इनके विशिष्ट आलोचक हैं। पत्र पत्रिकाओं में इनके विशिष्ट कद्रदाँ हैं। हिन्दी का सामान्य पाठक क्या जाने कि नई कहानी हिन्दी कथा साहित्य की अधुनातन विधा है अथवा मात्र किसी विशिष्ट दृष्टिकोण का परिचायक। हिन्दी कहानी प्रेमचन्द पूर्व काल से उत्तरोत्तर तीव्र होती

हुई चेतना का परिणाम है। समसामयिक जीवन के बदलते हुए मूल्यों ने इन नए कहानीकारों की दृष्टि में एक अनिश्चय अनास्था, जीवन की विडम्बना, सामाजिक स्तर भेद की पीड़ा तथा आत्म प्रताड़ना का कुहरा भर दिया है। हिन्दी कहानी के दूसरे दशक में इन नए कहानीकारों की आस्था डगमगा उठी है। भले ही अपनी सुरक्षा के अस्तित्व के लिए ये नए कहानीकार यह तर्क प्रस्तुत करें कि नई कहानी व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश में देखने का एक प्रयास है, परन्तु इस सारे कथा साहित्य पर अवसाद की गहरी और भीनी छाया पड़ी है। इस संप्रदाय ने अनेक दावे किए हैं, अनेक फतवे दिये हैं। "व्यापक सामाजिक संदर्भों के यथार्थ परिप्रेक्ष्य में अभिनव अर्थवत्ता प्रदान करने का श्रेय" लेने का प्रयास किया है।

इस प्रकार कहानी की राजनीति में उबाल पैदा कर, नई कहानी के मंजे हुए अखाड़ची, पिछड़ती हुई आत्म-चर्चा, छूटता एवं टूटता हुआ आधार, हाथ से जाते हुए नेतृत्व को सम्हालने में व्यस्त हैं। ये पुराने पड़ते हुए लेखन व चिंतन को सम्भालने की चिंता में ही घुले जा रहे हैं। सारे वातावरण को इस प्रकार इन नए कहानीकारों ने एक साहित्यिक राजनीति का रंग प्रदान किया है।

अधुनातन हिन्दी कहानी—इसका मतलब यह नहीं कि नई कहानी के सिवाय हिन्दी कथा साहित्य में वैक्यूम ही है। हिन्दी के कितने ही सशक्त व प्रौढ़ कहानीकार हैं जो आज अपनी शिल्पगत नवीनताओं व स्वस्थ दृष्टिकोण से हिन्दी अधुनातन कथा साहित्य के बृहत्तर विकास में अपूर्व सहयोग दे रहे हैं। सत्साहित्य तो चिर नवीन व सामयिक वादों से परे रहता है। हिन्दी कथा साहित्य का विविध मुखी विकास उसकी गतिशीलता का परिचायक है। हिन्दी के कितने ही श्रेष्ठ कहानीकार हैं जो किसी भी विशिष्ट कहानी संप्रदाय के दायरे में नहीं आते परन्तु फिर भी उन पर किसी न किसी संप्रदाय का ट्रेडमार्क लगाने

का प्रयास किया जाता है। ऐसा कर इन संप्रदायों के कहानीकार एक ओर तो इन कहानीकारों को अपने गुट में शामिल करना चाहते हैं और दूसरी ओर अपने 'मूवमेंट' के लिए सहानुभूति अर्जित करना चाहते हैं।

इस अधुनातन कहानी की विधा में अधिकतर दूसरे दशक में लिखी गई हिन्दी कहानियां हैं जिनमें सूझबूझ का पैनापन और अभिव्यक्ति में बारीकी है। स्वस्थ मनोवृत्ति से लिखी गई हिन्दी अधुनातन कथा साहित्य की कितनी ही रचनाएं विकास की परिचायक हैं। नई कहानी के इस कुहासे के बीच नवीन दृष्टि विकसित हुई है। इसने विगत मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन कर विस्मृत मूल्यों को पहिचानने का साहस किया। इन कहानीकारों ने यह माना कि अनास्था, कुंठा आदि के बीच मनुष्य जीवन से विमुख नहीं हुआ है। "जीवन जीने के लिए है।" 'वार एंड पीस, के रचनाकार ने अपने उपन्यास के माध्यम से इस आदर्श को घटित कर कोई नई जमीन नहीं तोड़ी थी। परन्तु जितने सरल से आदर्श को वह सरल ढंग से कह गया था उसीमें उसकी कला की महानता थी। जिस सार्वभौम व शाश्वत सत्य का उद्घाटन इस मूलभूत आदर्श में प्रगट हुआ उसे इस नवीन दृष्टि ने स्वीकारा। उसने भी माना कि जीवन जीने के लिए है। इस जीने की प्रक्रिया में वह जीवन से जूझने की प्रेरणा देता है। जीवन मात्र मृत्यु और पैदाइश का इंटरवल नहीं है। जीवन चाहे किसी प्रकार जीना पड़े परन्तु उससे संपृक्ति छूट नहीं सकती। इन स्वस्थ कथाकारों में दृष्टि की सचेतनता है।

स्वस्थ मनोवृत्ति के इन कलाकारों ने जीवन के प्रति अपने दायित्वों को समझा है। इन्होंने हाथीदाँत की मीनारों में बैठकर तटस्थ व निर्वैयक्तिक भाव से युगबोध की व्याख्या नहीं की। नए कहानीकारों की अपेक्षा ऐसे कलाकारों के दृष्टिकोण में अधिक सीरियसनेस है। वातावरण तो वही है पर दृष्टि का फेर है।

जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के विकास में योगदान दिया हैं उन कलाकारों ने नए मूल्यों के निर्माण में सहायक होकर इस अनिश्चिय के कुहासे को दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने व्यक्ति को अतीत और आगत के संदर्भ में, उसके परिवेश में देखने का प्रयास किया है। उन्होंने प्राचीन आदर्शों के निरूपण मात्र पर अपना सिर नहीं खपाया है। वैसे तो आदर्श भी एक रूढ़ि है—क्योंकि उसमें ठहराव है।

स्वस्थ दृष्टि से कहानी लिखने वाले कहानीकारों का ध्यान समाज पर केन्द्रित रहा है परन्तु समाज से आशय भीड़ से कतई नहीं है। उनमें निर्वैयक्तिक मौलिकता तथा वस्तुनिष्ठता का आग्रह है। उन्होंने सरलता व सहजता से जीवन-बोध को ग्रहण किया। उन्हें अखाड़ची बनकर अपने आसपास गर्द उड़ाकर 'महान्' बनने का प्रयास नहीं करना पड़ा। अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए उन्हें शिल्प की दुर्बोधता को नहीं अपनाना पड़ा। उनके यथार्थ वर्णन में संश्लिष्टता है, कलात्मक वैविध्य के साथ उसमें गहराई है। अधिकांशतः नई कहलाने वाली कहानियाँ नैतिक आदर्शों को नकारनेवाली, अधकचरे संस्पर्शों से पूरित तथा कहानीकारों के निश्चित दृष्टिकोणों से ही परिचालित होती हैं। नएपन का दम भर उन्हें पुराने पर ही रंगरोगन कर मुलम्मा चढ़ाना पड़ता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में इन्ही दृष्टियों को लेकर कहीं काव्य और कही शिल्प के प्रयोग हुए हैं। ये सही दिशा और दशा की ओर संकेत करते हैं। यदि किसी युग विशेष में विशिष्ट तत्व हैं तो नाम की संज्ञा को तो स्वीकारना ही होगा परन्तु यदि यह नाम किसी मत विशेष का द्योतक हो तो उसकी असलियत का पर्दाफाश होना ही चाहिए।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानीकार ने जीवन को समग्रता में देखा है और सतही टुकड़ों में बांट कर भी। परन्तु जीवन को सतही टुकड़ों में बांट कर देखना उसके प्रति अन्याय करना है। जिन

कहानियों में पाठकों को चमत्कृत करने के लिए रहस्यवादिता व अस्पष्टता को भरा गया है—समय की दौड़ में ऐसी कहानियों का भला क्या मूल्य ? और इसीलिए हिन्दी का सामान्य पाठक नई कहानी से प्रभावित होने की अपेक्षा उससे व उसकी चर्चा से भयभीत अधिक हुआ है। यदि अमुक कहानीकार यह समझते हों कि पाठक जितना कम समझेगा उतना ही उनका आदर करेगा—तो वे स्वयं को ही धोखा दे रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि वह क्लिष्टता, अस्पष्टता तथा दुरूहता का कोहरा फैलाकर कलाकार अपने पाठकों या दर्शकों को धोखा नहीं दे सकता।

यांत्रिक पीड़ा को भोगकर द्वितीय दशक के कथाकारों के मन में आरोपित सत्यों या संबंधों के विरुद्ध क्षोभ है। इसीलिए अधिकतर कथाकारों की दृष्टि व्यक्ति और व्यक्तिवाद को उभारकर केवल रूप तत्वों पर ही नही टिकती। भाव-सौंदर्य की अभिव्यक्ति भी उसका अनिवार्य आग्रह है। वैसे तो नई कहानी व कहानी के संप्रदायों के माध्यम से हिन्दी कहानी में व्यक्तिवाद से लेकर, भीड़वाद को साहित्य में पुरस्सर करने का प्रयास किया गया है। समय और सुविधा के अनुसार कुछ लोकप्रिय पत्रिकाओं ने भी इन विवादों को प्रश्रय दे धोखे की टट्टी को खड़ा किया। कहानी में नए पुराने का भेद ही सतही है, आरोपित है।

आधुनिकता के संदर्भ में जब हम साहित्य में अश्लीलता के प्रश्न पर दृष्टिपात करते हैं तो प्रतीत होता है कि कई कहानीकार तो ऐसे हैं कि जिनके सामने अश्लीलता एक लक्ष्य बन कर रही है। साहित्य में आधुनिकता से पीड़ित ये लेखक कट्टरपंथी नीतिवादियों की आलोचना कर ऐसा मार्ग अपनाते हैं जो उन्हें अनीति की दूसरी सीमा पर खींच ले जाता है। वे शरीर को निरावरण चित्रित करने में ही अपनी कला का कमाल समझते हैं। उनकी कला का साध्य युवक युवतियों की कामुक प्रवृत्तियों तक ही सीमित है। वैसे हर नंगा चित्रण अश्लील नहीं कहा जा सकता। नग्नचित्रण में लेखक के प्रयोजन को समझना होगा। मनुष्य ने पोषाक

पहिन कर 'नग्नता' शब्द को जन्म दिया। प्रकृति में नग्नता तो पहले भी थी और आज भी है। परन्तु नग्नता शब्द का आविष्कार ही पोषाक के आविष्कार के साथ हुआ। और नग्नता के साथ ही साहित्य में अश्लीलता शब्द का जन्म हुआ। यौन में सृजन के कितने ही रहस्य छिपे होते हैं किन्तु कहानीकारों को उसे स्वस्थ दृष्टिकोण से ग्रहण करना होगा। उरोजों के यथार्थ वर्णन से, छातियों के नाप लेने व नितंबों के दिग्दर्शन से ये कलाकार अपनी अस्वस्थ एवं विकृत प्रकृति का ही परिचय देते हैं। ऐसे साहित्य को क्या संबल मिलेगा ?

शामलदास आर्टस् कॉलेज
भावनगर

—सुदर्शन मजीठिया

ऊनी दस्ताने

डॉ. अम्बाशंकर नागर

खलीफा रहमनखां उन अजीबो गरीब किस्म के आदमियों में से थे जिन्हें एक बार देख लेने पर आसानी से भुलाया नहीं जा सकता। उनका नाक-नक्शा, रहन-सहन और बात-चीत करने का तौर-तरीका ही कुछ ऐसा था कि अगर मनहूस से मनहूस आदमी को भी उदासी के क्षणों में उनकी याद आ जाये तो हँसी आये बिना न रहे।

खाँ साहब बुजुर्ग आदमी थे। अपने उस्ताद की गद्दी के अधिकारी होने के कारण सङ्गीतज्ञों की दुनिया में वे 'खलीफा' के नाम से मशहूर थे। उनकी उम्र का सही पता तो किसी को नहीं था पर जिन दिनों की मैं बात करता हूँ उन दिनों उनकी उम्र यही साठ-पैंसठ के करीब रही होगी। सर पर जयपुरी साफा, गाढ़े की अँगरखी और चूड़ीदार पायजामा, यही उनकी पोशाक थी। घर से बाहर निकलते समय आँखों में सुर्मे की

सलाई फेरना और मुँह में पान की गिलोरियाँ चबाना वे कभी नहीं भूलते थे। निहायत खुशमिजाज और नाजुक तबीयत के आदमी थे।

एक दिन सुबह-सुबह एक बगल में मुर्गी और दूसरी में बकरी के लिए चारा दबाये खाँ साहब घर को लौट रहे थे। मौका देखकर मैं भी उनके साथ हो लिया। दुआ-सलाम के बाद खाँ साहब से मैंने अर्ज किया कि मुझे भी अपने शागिर्दों में शामिल कर लें। मूँछों की ओट में खाँ साहब के होठों पर एक हल्की-सी स्मिति की रेखा खेल गई, पर उसे दबाकर दूसरे ही क्षरण वे बोले—"पंडितजी, भला रास्ते चलते भी कभी ऐसी बातें तय हुआ करती हैं। आप इस नाचीज के झोंपड़े पर जब चाहें शौक से तशरीफ ले आइये या फिर जब चाहें मुझे अपने दौलतखाने पर तलब कर लीजिये। बुरा न मानें, रस्ते चलते ऐसी बातें नहीं हुआ करतीं।"

दूसरे दिन मुँह अंधेरे ही मैं खाँ साहब के घर पहुँचा। खाँ साहब के तम्बूरे की झंकार दरवाजे के बाहर साफ सुनाई पड़ रही थी, दो-तीन शागिर्द भैरव राग के आरोह-अवरोह की रगड़ पट्टी कर रहे थे। बीच-बीच में उस्ताद का हुक्का भी रह-रहकर गुड़गुड़ा उठता था। मैंने बाहर खड़े एक बच्चे से उस्ताद को खबर देने के लिए कहा। थोड़ी देर बाद वही बच्चा आकर मुझे अदब के साथ उस्ताद की खिदमत में ले गया। नवागंतुक को देखकर छात्रों का अभ्यास थोड़ी देर के लिए रुक गया। मैंने कहा—"रुक क्यों गये, चालू रखिये।" इस पर उस्ताद ने कहा—अमा पंडितजी, यह तो चालू है और चालू ही रहेगा। कोई एक दो दिन का काम थोड़े ही है। आप जानते हैं यह बरसों का काम है। जिस तरह पहलवान बनने के लिए बरसों दंड पेलने

पड़ने पड़ते हैं उसी तरह संगीतज्ञ बनने के लिए भी बरसों रियाज करना होता है और तिस पर भी खुदा ने सुन ली, तो सुन ली, नहीं तो काता पींजा कपास का कपास……! कोई बेसुरा है तो कोई बेताला। संगीत कोई आसान चीज नहीं है। गाना लोहे के चने चबाना है। अँगुली से इन्कार करने की मुद्रा बनाते हुए उस्ताद ने कहा—"इसीलिए तो बुजुर्गों ने कहा है—'गा—ना' याने 'गा—मत।'

खाँ साहब के मुँह से गाने की यह विलक्षण व्याख्या सुनकर मेरे संगीतज्ञ बनने के मनसूबे काफूर होने लगे। मैं तो समझता था कि यही चार छः महीने में सब गाना बजाना आ जायगा, पर खाँ साहब ने बरसों की बात कर दी और तिस पर भी आया तो आया नहीं तो……कोई बेसुरा है तो कोई बेताला!

मैं इन विचारों में गोते लगा ही रहा था कि खाँ साहब ने कहा—पंडितजी यह काम आप जैसों के करने का नहीं है। देखिये, इन दो छोकरों को पाँच साल से तैयार कर रहा हूँ पर अभी तक इन कम्बख्तों को लय और सुर तक की तमीज नहीं—राग पर ध्यान देते हैं तो ताल गायब, ताल पर ध्यान देते हैं तो राग गुम। अब बताइये क्या करूँ? शागिर्द उस्ताद की तसवीर होता है। अगर कहीं जाकर ये लोग इस तरह गाये, तो मेरा नाम गया या रहा?

इस बार उस्ताद की बात सुनकर मेरे दिल ने कहा—"ऐसे गुरु जान न दीजै हो!" ऐसा सिखानेवाला किस्मत से ही मिलता है। अतः मैंने इन सब मुश्किलों के बावजूद भी संगीत सीखने का अटल निश्चय कर लिया और उसकी सूचना उस्ताद को दे दी। उस्ताद ने पहले तो तकल्लुफाना आनाकानी की पर अन्त में बोले—"जब आपकी इतनी लगन है तो अल्लाह आपकी

मुराद पूरी करेगा। सीखिये, आप चाहेंगे तो हम आपके घर ही सिखाने आ जाया करेंगे।"

संगीत का अभ्यास शुरू हुआ। उस्ताद ने पहले दिन सरस्वती-पूजा और हाथ पर गंडा बाँधने का दस्तूर किया, नजराने के पाँच कलदार और सवा सेर मिठाई उस्ताद को नजर की गई। उस्ताद को खुश करने में मैंने कसर न रखी। उस्ताद ने भी अपनी ओर से मुझे दिल खोलकर सिखाने को वादा किया।

संगीत सीखते हुए मुझे करीब दस ही दिन हुए होंगे कि एक दिन उस्ताद सायंकाल के समय घर पर आये। इस असमय उन्हें देखकर मुझे जरा आश्चर्य हुआ, क्योंकि सुबह बदस्तूर उनसे मुलाकात हो चुकी थी। वे बड़े इत्मिनान से मुझे एकांत में ले जाकर कहने लगे—"पंडितजी घर पर अचानक कुछ मेहमान आ गए हैं, अगर पंद्रह-बीस रुपये इनायत हों तो आबरू बच जाये, यकीन रखिये मैं आपको जल्दी ही लौटा दूंगा।" एक तो उस्ताद, फिर उनकी पहली फर्माइश, कुछ भी कहते न बना; अन्दर गया, श्रीमतीजी से बीस रुपये निकलवाये और लाकर चुपचाप उस्ताद के हवाले कर दिये। उस्ताद खुश होकर दुआ देते हुए चले गये।

बस इसी समय से उस्ताद और श्रीमतीजी के ग्रहों में विरोध-वैमनस्य उत्पन्न हो गया। उस्ताद के जाते ही उन्होंने विवादी स्वरों में ध्रुपद आलापना शुरू कर दिया—'पाँच दिन सीखते नहीं हुए और मुसल्ले को बीस रुपये दे दिये। क्या सिखा दिया है ऐसा उसने? अभी तो बाजे पर हाथ धरना भी नहीं आया। देखना, ऐसे ही रोज-रोज आकर माँगेगा वह? ध्रुपद की इस आड़ी-ड्योढ़ी फिरत में श्रीमतीजी एक-आध बार बेसुरी-बेताली

भी हुई पर मैंने उस बात को उदारतापूर्वक देखी-अनदेखी कर दिया और जहाँ भी वे घूमफिर कर हम पर आईं, वहीं स्वीकृति एवं सम्मति सूचक 'हाँ-हाँ, हूँ-हूँ' करके उनकी दाद दी। शास्त्रीय संगीत की ही तरह गार्हस्थ्य संगीत में भी दाद देने का बड़ा महात्म्य है। संगीत मर्मज्ञ जानते हैं कि बड़े गवैये गाने वाले के बेसुरे-बेताले हो जाने पर ही 'वाह-वाह' या 'सुभान अल्लाह' कह कर दाद देते हैं। गार्हस्थ्य संगीत में भी कोई बेसुरा-बेताला हो जाए तो दूसरों को उसकी दाद ही देनी चाहिए। संगीत से यह तत्वज्ञान तो वास्तव में प्राप्त करने जैसा ही है। उस समय इसी विवेक के कारण मैंने श्रीमतीजी का विरोध नहीं किया। फलस्वरूप जो बादल उमड़े-घुमड़े थे, वे गरजे जरूर पर बरसे बिना ही छँट गये और जल्दी ही आकाश साफ हो गया।

संगीत का अभ्यास चलता रहा। उस्ताद बीच-बीच में हिम्मत बढ़ाते रहे—"आपका जहन अच्छा है, बस रियाज करते रहिए, सब ठीक हो जायगा। आप जानते हैं बरसों का काम है यह। हमने पूरे चालीस साल इसके पीछे झक मारी है। हमारे उस्ताद बड़े संगदिल आदमी थे। जरा-सी गलती हुई और कयामत आई। बड़ी बेरहमी से मारते थे हमें। एक बार खमाज के अवरोह में शुद्ध 'नी' लगा दिया था, इस पर तो उन्होंने पास में पड़ी सितार को ही मेरी खोपड़ी पर दे मारा था। तोबा, तोबा! आदमी क्या थे पूरे जल्लाद थे। पर साहब बिना इसके हमें गाना आता भी कैसे? फिर अपने कान को छूकर स्वर्गीय गुरू के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहने लगे, पर जब कभी वे खुश होते थे, आपसे अब क्या कहूँ, बस निहाल कर देते थे। एक बार महफिल में वे ललित के खयाल के बोल ही भूल गए, मैं उनके पास बैठा तानपूरा छेड़ रहा था। मैं भाँप गया। जैसे ही मैं "एक दंत,

दयावंत चतरभुज" कहकर आलापा, उनका रोंया-रोंया असीस उठा।" भरी सभा में उन्होंने मुझे गले लगा लिया। कहने लगे, देखो, यह है मेरी तसवीर, यह रखेगा मेरा नाम। पंडितजी, आपसे क्या अर्ज करूँ उन पीर-मुर्शदों की, जब तान लेते थे तो तान के आरोह के साथ खुद भी गाते-गाते खड़े हो जाते थे। ऐसे लगता था जैसे तान खुद ब खुद मेहफिल में साकार होकर खड़ी है और फिर जब तान सिमटती थी तो वे तान के साथ-साथ नागिन की तरह बल खाते हुए ऐसे पछाड़ खाकर सम पर गिरते थे कि सारी मेहफिल वाह-वाह कह उठती थी। श्रद्धापूर्वक गुरु-स्मरण करके उन्होंने अपने कानों का पुनः स्पर्श किया और एक लम्बी आह खींच कर बोले—"अच्छा पंडितजी चलूँ, पर आपको एक तकलीफ देनी है, क्या करूँ कहते नहीं बनता' निहायत शर्मिंदा हूँ। पर आप कोई पराये थोड़े ही हैं, आप तो देख ही रहे हैं, अर्से से मेरे पैरों में जूतियाँ नहीं हैं। आज शाम को ठाकुर संग्रामसिंहजी के यहाँ गाने जाना है। और कुछ न सही भले आदमी के सर पर साफा और पैरों में जूतियाँ तो होनी ही चाहिए। बिना जूतियों के शरीफ से शरीफ इन्सान भी उचक्का मालूम पड़ता है। अगर आप सिर्फ दस रुपये इस आड़े मौके पर और दे दें तो मेरी मुश्किल आसान हो जाये। यही अपनी सलीमशाही जूती आठ-दस रुपये में आ जायेगी। तोबा है, क्या जमाना आया है। जब हम छोटे थे तो मखमल की सलीमशाही जूतियाँ दस-बारह आने या ज्यादा से ज्यादा एक रुपये में आ जाती थीं। बुरा हो इस महँगाई का। बहरहाल कल सुबह आपके पैसे वापस हो जायेंगे, या आप चाहें तो महीने में भर लीजियेगा। पर इस वक्त त दिलवा दीजिये, उठिये, देर न करिये।

अब मेरी जान मुश्किल में, मुलाएजे का मैं सदा से कच्चा ! उस्ताद को इन्कार नहीं किया जा सकता और अन्दर श्रीमतीजी को दस रुपये और निकाल देने के लिए नहीं कहा जा सकता। असमंजस के क्षणों में इस समय मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि वे पुरुष वाकई समझदार हैं जो संदूक की चाबी जनेऊ से बाँधकर रखते हैं। जिस घर में पति अपनी सारी कमाई पहली तारीख को घरवाली के हाथ में लाकर धर देता है और फिर महीने भर पाई-पाई के लिए मुहताज रहता है, उस घर में देवता भले ही निवास करें पर उस बेचारे-से दीन प्राणी का इस संसार में कोई नहीं होता। इस मामले में मारवाड़ी बड़े दूरदर्शी हैं। देने की अपनी बात ही क्या, मरने तक वे अपनी सम्पत्ति का भेद अपनी घरवाली को नहीं देते। यही कारण है कि वे करोड़ों की लेन-देन और लाखों की सखावत करते हैं। इसके विपरीत मेरे जैसे नासमझ लोग जो कमाते हैं हर महीने पत्नी के हाथ में धर देते हैं; नतीजा यह होता है कि हर काम को करने से पहले वे पत्नी से पूछने अन्दर जाते हैं और लौटकर आते हैं तब तक अवसर जा चुका होता है।

मुझे असमंजस में देखकर उस्ताद जरा बिगड़े—"वाह साहब, क्या आप हमें दस रुपल्ली के लायक भी नहीं समझते ? आपको हमने अपने दिल के करीब समझा, इसलिए जरा फरमाइश कर दी, वर्ना आपकी दुआ से आज भी ऐसे-ऐसे शागिर्द मौजूद हैं जो हमारे एक इशारे पर तन-मन-धन निछावर कर दें। ठाकुर साहब ने हजार बार कहा, खाँ साहब बुढ़ापे में क्यों मारे-मारे फिरते हैं, हमारी रियासत में चले आइये। पाँच सौ रुपया महीना, रहने को मकान और खिदमत को नौकर-चाकर, किसी तरह की तकलीफ नहीं होने दूँगा आपको।" मगर मैंने यह कहकर टाल

दिया कि, 'आप ही की दुआ है। आप जैसे मेहरबान जब एक ही मुजरे के पाँच सौ बख्श देते हैं तब मुझे और क्या चाहिए। खुदा सलामत रखे आप जैसे सरपरस्तों को।'

खाँ साहब की बात सुनकर मुझे बड़ी शर्मिंदगी महसूस हुई। जैसे-तैसे दस रुपये श्रीमतीजी से निकलवाकर उस्ताद के हवाले किये। उस्ताद रुपये लेकर चुपचाप गंभीर मुद्रा बनाये चल दिये। शायद उन्होंने अंतःपुर का वार्तालाप सुन लिया था। मुझे बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी। रुपये दिये पर देने का मजा न आया। गुनाह और बेलज्जत !

इसके बाद दो-तीन दिन तक उस्ताद गायब रहे, मुझे लगा कहीं नाराज तो नहीं हो गये। पर नहीं, जिस दिन घर आये बड़े खुश नजर आ रहे थे। कपड़े भी निहायत साफ-सुथरे, मूछों पर ताजा खिजाब, आँखों में सुर्मे की तीखी रेख, छैला बने हुए थे। मैंने उन्हें देखते ही कहा, उस्ताद आज तो आप पहचाने भी नहीं जाते, एकदम बदल गए हैं। इस वक्त आपको देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि आप बूढ़े हैं। 'बूढ़ा !' वे चौंके, फिर मूछों पर हाथ फेरते हुए मुस्कराकर कहने लगे—"पंडितजी संगीतज्ञ कभी बूढ़ा नहीं होता। हमारे उस्ताद करामत हुसेनखाँ साहब तो आपकी दुआ से सौ वर्ष पूरे कर चुकने पर भी बड़े जिंदादिल थे। पूरे सवा सौ वर्ष की उम्र पाई उन्होंने। पर अब आपसे क्या कहूँ ? अपने आखरी दिन तक भी उन्होंने बालों का खिजाब और आँखों का सुरमा नहीं छोड़ा। उस उम्र में भी ढाका की मलमल का चुन्नीदार कुर्त्ता और कामदार मखमल की वासकुट पहने बिना वे घर से बाहर नहीं निकलते थे। पर कहाँ वे पीर-मुरशद और कहाँ हम; उनके सामने हमारी बिसात ही क्या है ?

फिर कुछ याद करते हुए उस्ताद ने जेब में हाथ डाला और मुट्ठी भर रेजगारी जेब में से निकालते हुए बोले—"लीजिये पंडितजी, इसमें से आप अपने दस रुपये गिन लीजिये। उस दिन हमने आपको नाहक तकलीफ दी। निहायत अफसोस है हमें।"

मुझे सचमुच बड़ी शर्म महसूस हुई। बड़ी नम्रता के साथ मैंने उनसे कहा—"नहीं नहीं, यह आप कैसी बातें कर रहे हैं। आप मुझे गलत न समझिये। रेजगी इकट्ठी करके लौटाते हुए मैंने कहा—आप इसे रखिये। उस्ताद ने थोड़ी देर तक तकल्लुफ किया. फिर निश्चित होकर 'अच्छा जैसी आपकी मर्जी' कहते हुए पैसे समेट कर जेब में डाल लिये। फिर आश्वस्त होकर कहने लगे—"यह तो जमाना जरा बदल गया है वर्ना आपसे लेने का हमारा हक है। आपसे न लेंगे तो किससे लेंगे। पहले के जमाने में हम अपने उस्ताद को कुछ दे नहीं सकते थे तो उनकी खिदमत करते थे। हमने अपने उस्ताद की इतनी खिदमत की है कि कोई क्या करेगा। हमारे उस्ताद को कबूतर और तीतर पालने का बड़ा शौक था। दिन भर कबूतरों की काबक या तीतर का पिंजड़ा लिए उनके साथ-साथ हमें घूमना पड़ता, रात को जब तक उन्हें नींद न आ जाती, उनके पाँव दबाने पड़ते थे। किसी दिन खुश हो जाते तो कुछ बता देते, नहीं तो बरसों वही सबक चलता रहता। हमने बड़ी मुश्किल से इस फन को हासिल किया है। अब वो खिदमत का जमाना तो रहा नहीं, लोग पैसा देकर संगीत लेना चाहते हैं पर खिदमत से हासिल होने वाली चीज कभी पैसे से हासिल होती है?

लगभग बीस-पच्चीस दिन बीते होंगे कि एक दिन फिर उस्ताद असमय घर पर आ धमके। मैंने सोचा, आज फिर कयामत आ गई। उन्हें देखकर मैं बड़े धर्म संकट में पड़ गया। उस समय

शायद मैं कहीं बाहर जाने की जल्दी में था। हाँ, याद आया, एक जरूरी काम से मुझे दिल्ली जाना था। वैसे भी जब कभी मैं उन्हें वक्त-बेवक्त आया देखता तो इस तरह डर जाता जैसे कोई कर्जदार साहूकार को देखकर डरता है।

उस्ताद ने आते ही अँगुली के पोरों पर गिनने की कोशिश करते हुए कहा–

"पंडितजी, आज कितनी तारीख हुई होगी भला ?"

कलेंडर की तरफ देखकर मैंने बताया—

"जी आज पचीस तारीख है।"

उस्ताद ने कहा—

"महीने में कै दिन बाकी रहे ?"

"यही कोई पाँच-छः दिन।"

"तो अगर आप मुझे पाँच-छः दिन पहले..........." आगे वे कुछ न बोले, पर मैं उनका मतलब बखूबी समझ गया।

समझकर भी मैं इस अप्रिय प्रसंग को समझना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने कहा—

"क्या बात है ? जरा साफ-साफ कहिये।"

वे थोड़ी देर तक मेरी ओर एकटक देखते रहे, फिर कुछ सोचकर बोले—"अब क्या कहूँ आपसे, कुछ ऐसी ही जरूरत आ पड़ी है और अब महीने में बाकी दिन भी कै रहे हैं, अगर आप पाँच-छः दिन पहले दिलवायें तो बड़ी मेहरबानी हो।"

श्रीमतीजी ये सब किवाड़ की ओट से सुन रही थीं। उन्हें डर था कि कहीं इस वक्त फिर उन्हें कुछ न दे बैठूँ। इसलिए कुन्दे को खटखटाकर उन्होंने मुझे अन्दर बुलाया। अन्दर जाते ही श्रीमतीजी ने मुझे आड़े हाथों लिया। क्यों इस बूढ़े खूसट को मुँह

लगा रखा है। साफ इंकार क्यों नहीं कर देते। कह दो, जो तय किया है बस वही महीना होने पर मिलेगा। रोज-रोज माँगने चला आता है जैसे कभी देकर भूल गया हो। मैं भी उस दिन जरा झल्लाया हुआ और परेशान था। श्रीमती के शब्दों ने आग में घी का काम किया।

बाहर आया तो मैंने देखा उस्ताद आस लगाए बैठे हैं, मुझे देखते ही बोले—"क्या कहीं बाहर जाने की तैयारियाँ हो रही हैं ?"

मैंने कहा—"जी हाँ यही एक-दो दिन के लिए दिल्ली जा रहा हूँ।"

"अच्छा तो दिलवा दीजिये, चलूँ फिर।"

मैंने दिल कड़ा करके कहा—"माफी चाहता हूँ इस वक्त तो, महीना होने पर ले जाइयेगा।"

उस्ताद का चेहरा लटक गया। थोड़ी देर तक चुप रहकर वे बोले—"अच्छा पूरे न सही थोड़े-बहुत जितने हो सकें उतने ही सही। बड़ी मुश्किल में हूँ वरना दो-चार दिन रुक जाना बड़ी बात न थी। लाइये दस का पत्ता तो कम से कम निकालिये।"

मुझे बड़ी ग्लानि हुई, साथ ही उनके माँगने का लहजा भी नागवार हुआ। मैंने चिढ़कर कहा—"बाज आया मैं संगीत सीखने से। मुझे सीखते अभी पूरे पचीस दिन भी नहीं हुए और तीस रुपये मैंने आपकी नजर कर दिए और महीने की फीस के रुपये इस पर भी ज्यों के त्यों बाकी रह गए। यहाँ कोई चाँदी की टकसाल तो नहीं। आपने मुझे अभी तक एक भी गाना पूरा नहीं सिखाया और जब देखिए तब रुपये, रुपये की रट।" कोई जागीरदार या सेठ-साहूकार तो हूँ नहीं। एक मामूली-सा

नौकरी-पेशा आदमी हूँ। इसलिए माफी चाहता हूँ। महीना होने पर आकर हिसाब कर ले जाइए।

यह सुनकर उस्ताद के दिल पर क्या बीती, यह तो वे ही जानें पर मैंने यह अवश्य अनुभव किया कि मेरे मुँह से ऐसे शब्द निकलेंगे इसकी उन्हें कल्पना नहीं थी। मेरे शांत होते ही वे बोले—"तोबाह, तोबाह ऐसा मालूम होता तो मैं आपसे अर्ज ही न करता। कुरान की कसम जो अब कभी आपसे किसी चीज की दरख्वास्त करूँ। मैं आपको और शागिर्दों की तरह नहीं गिनता। आप सीखिये और शौक से सीखिये । भूल जाइये इस बात को।"

मैंने सोचा अब आई उस्ताद की अक्ल ठिकाने । जब देखो तब माँग-माँग, अब कुरान की कसम खाने से कम से कम रोज-रोज की इस झिक-झिक से तो छुटकारा मिला।

गाड़ी का टाइम हो चुका था इसलिए सामान नौकर के सिर पर रखकर स्टेशन के लिए रवाना हुआ। उस्ताद भी चौराहे तक पहुँचाने आये। सर्दी जरा ज्यादा थी। इसलिए पहने-ओढ़े रहने की हिदायत देकर दुआ-सलाम के बाद उस्ताद विदा हुए।

अभी दो-चार कदम ही गये होंगे कि यकायक किसी बात के याद आ जाने से रुककर उस्ताद ने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा—

"पंडितजी, जरा सुनिए तो, दिल्ली जा रहे हैं न आप ?"

"मेरा स्वीकृति सूचक संकेत पाकर उन्होंने कहना जारी रखा—

"देखिये इस साल बड़े गजब की सर्दी पड़ रही है, अगर भूलें नहीं तो एक मामूली-सी फर्माइश करूँ ?"

मैं मन ही मन सोचने लगा कि अभी-अभी फर्माइश न करने की कुरान की कसम खाई है और अभी फिर वही फर्माइश! पर दूसरे ही क्षण न जाने कैसे उनकी सरलता और संवेदना से मेरा मन द्रवित हो उठा, मेरी इस उदारता का एक कारण शायद यह भी था कि मेरे औदार्य में कटौती करने के लिए उस समय वहाँ मेरी गृह अथवा वित्त मंत्राणी महोदया उपस्थित नहीं थीं। मैंने कहा—

"आप मेरे उस्ताद हैं। मेरे लायक जो भी खिदमत हो जरूर कहिए।"

उस्ताद ने बड़े भोलेपन से कहा—"पंडितजी आते समय मेरे लिए एक जोड़ी ऊनी दस्ताने जरूर लेते आइये, भूलिए नहीं। खुदा हाफिज।

आशा की डोर

डॉ. गोवर्धनलाल शर्मा

संसार की कटुता का अनुभव रहीमबेग को तब हुआ जब उनके वालिद जहीमबेग का साया उनके सिर से उठ गया और उन पर उनके कुनबे का भार आ पड़ा। जब कोई किसान बेबस हो नये बछड़ों के कन्धों पर हल का जोत रखता है तो बछड़ा शुरू में जोश से हल घसीटता है और साथ के पुराने बैल से आगे हो जाता है। कुछ समय पश्चात् गर्दन नीचे लटका, बेदम हो हाँफने लगता है। नये बछड़े की तरह ही साहस और अदम्य उत्साह से उन्होंने अपने घर का बोझ अपने कन्धों पर उठा लिया पर निभा न सके।

मियाँ रहीमबेग की उम्र होगी लगभग बीस वर्ष और अब तक वे दो बार मिडिल में बैठ चुके थे। मंजूरे वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है। क्या करते बेचारे ? उनके पिताजी जहीमबेग ने बार-बार पूरा प्रयत्न किया कि उनका बेटा जो

स्वयं एक बच्चे का बाप बन बैठा था कम से कम मिडिल पास ही कर ले। ट्यूशन करवाने पर भी लगातार अपने पुत्र को दो साल फेल होते देखकर, बेटे की बदकिस्मती कोसते हुए बेचारे जहीमबेग एक रोज चल ही बसे, अपने अयोग्य उत्तराधिकारी पर सारे कुनबे का भार डाल।

और बेचारे रहीमबेग भी क्या करते ! मिडिल फेल ठहरे और कौन बैठा था उनकी सिफारिश करने। कहीं अच्छी नौकरी मिलने की आशा करना ही मूर्खता होती। कुछ सोचा, विचारा और पास के शहर की ओर चल देने का निश्चय किया, मजदूरी करने की गरज से। घर के गाँव में मजदूरी करते शर्म भी आये, पर पराये हर देश में किससे शर्म करने की जरूरत है ? कौन जानता है कि वह जहीमबेग का बेटा है ? और फिर शर्म की बात ही क्या ? कोई बुरा काम तो है ही नहीं ! काम करेगा और पैसा लेगा। कोई चोरी या हरामीपना थोड़े ही है। और वह तन्दुरुस्त है, काफी कमा लेगा। दो रुपये से कम क्या पड़ेगा। आठ आने में उसका काम मजे से चल जायेगा। और मजदूरी का क्या ? सभी तो पापी पेट से मजबूर हैं। फिर शीघ्र ही फातिमा, बच्ची और अपनी अम्मा को शहर ले जायेगा। बस जरा उसका काम जम भर जाय।

उन दिनों को बीते आज कई साल हो गये। उसका जीवन कई घाटियों को पार कर चुका है। अब वह अधेड़ है। सुनहरी संध्या को एक दिन वह बैठा तो अचानक उसे याद आया कि अभी उसको रेलवे स्टेशन पर काम करते एक महीना हुआ ही था कि बड़ी-बड़ी मूछोंवाले रेलवे जमादार ने उसे प्लेटफार्म से अकेले बाहर जाते देखकर पुकारा—'ठहरो रहीम !' और फिर पास आकर अपने लकड़ी के डण्डे से गेट की सींकचों को ठोकता

हुआ फुसफुसाया—'कहो ! काम तो मजे से चल रहा है । भई पढ़े-लिखे आदमी हो ।'

आत्म प्रशंसा के संकेत से पुलकित-सा होकर उत्तर दिया था—'सब आपकी मेहरबानी है ।' अपने कर्कश स्वर को धीमा कर लोच लाते हुए जमादार बोला—'तो फिर भाई ! हमको भूल जाओगे ? तो इस महीने चाय तुम्हारी ओर से रही ।' अपने स्वर में दीनता लाते हुए रहीमबेग ने कहा था—'सरकार ! गरीब हूँ । वैसे तो आजकल कमाई भी ज्यादा नहीं है । मैं भला आपकी क्या खातिर कर सकता हूँ ?' 'उड़ो नहीं, मुझसे ! चिड़ियों से क्या खेत छिपा रहता है ?' और जमादार ने बात-चीत के दौरान में उसे चेता दिया था कि यदि वह हर माह २ रु. नहीं देगा तो वह उसका नम्बर छीन लेगा । रहीम पढ़हुआ है तो क्या ? और बात उसी दिन काफी बढ़ गई । रहीम ने घुड़का कि यदि जमादार ने उसे अधिक तंग किया तो वह मालबाबू से शिकायत कर देगा । यह जमादारपन को चुनौती थी । जोश में आकर जमादार ने उसका नम्बर अकारण ही छीन लिया । रहीम के लिए कुछ न हो सका । मालबाबू और स्टेशन मास्टर ने उसकी बातों पर कान भी नहीं दिया । उसने पहले बूढ़े रामसिंह की बात नहीं मानी पर अब वह उसके शब्द मान गया । 'भाई रहीम, ये सभी एक थैली के चट्टे-बट्टे हैं । कुत्तों के मुँह खून लग चुका है । भले आदमी थोड़ा-सा टुकड़ा डाल देते ।'

और उनकी कल्पना में साकार हो उठा है कि वह एक ऊँची पहाड़ी पर बैठा है । उसके एक ओर एक काफी अच्छा मैदान है चारों ओर पहाड़ियों से घिरा । दिखने में ऐसा सुन्दर सुनहला कि मन करता है दौड़कर वहाँ लेट जाय—उस ठंडी बालू में लेटा रहे । और दूसरी ओर है चहार दीवारी से घिरा कब्रिस्तान ।

छोटे-बड़े अगणित पत्थर उसे कुरूप किये हैं—उस कब्रों से पटे हुए भद्दे मैदान को। और समाज भी तो इसी तरह कुरूप हो रहा है। अगणित छोटे और बड़े पत्थर उसे कुरूप बनाये हैं। स्टेशन का पुलिस जमादार, मालबाबू और स्टेशन मास्टर सभी ऐसे ही पत्थर हैं। और सामने वाले सेठजी जिनके गोदामों में पड़े गेहूँ को घुन खा रहा है (यह सभी जानते हैं, पुलिस भी) सभी एक ही थैली के बट्टे-चट्टे हैं। जो समाज को कुरूप कर रहे हैं।

स्टेशन पर कुलीगीरी करते हुए भी वे एक सम्भ्रांत बंगाली बाबू पर अपनी परिश्रमशीलता का प्रभाव डाल सके थे। वे ही बंगाली बाबू अब उनके आड़े समय में काम आये। उन्होंने ग्रामोद्धार सेवा संघ द्वारा उन्हीं के गाँव में एक प्राथमिक पाठ-शाला खुलवा दी। वहीं पर रहीमबेग को साक्षरता आन्दोलन प्रारम्भ करने का काम १५) माहवार पर सौंपा गया।

दिनों-दिन महँगाई बढ़ रही थी। शहर में रहकर रहीमबेग एक नई बीमारी अपना आये थे—वह थी चाय की आदत। १५) रु. महावार में घर खर्च चलाना कठिन हो गया था। घर में से फातिमा चौधरी जाफर हुसेनजी के यहाँ से कभी-कभी पापड़ बेलने को मँगवा लेती थी और इस तरह कभी-कभी प्याज का खर्च निकाल लेती थी। रहीमबेग सोचा करते काश वे भी शहर के बाबुओं की तरह सुखी जीवन बिता सकते? पर सवाल यह था–समाज के घुन मिटें कैसे? पौधे की जड़ में लगी दीमक–वे अगणित रक्त-कीट कैसे दूर हों, तब फिर कहीं सभी व्यक्ति पनप सकें।

और वे कल्पना करने लगते कि उनका भेजा हुआ पहेली नं. दस का नतीजा बिल्कुल ही सही निकला और ५००) उन्हें ही मिलने वाले हैं। उन्होंने कल्पना में यह भी तय कर लिया था कि वे उसको किन-किन कामों में खर्च करेंगे। मकान की छत

के खपरैल टूट-से गये थे, उन्हें बदलवाना है। फातिमा के लिए लट्ठे की सलवार व ओढ़नी लेनी है। छोटी बच्ची के लिए स्वेटर लाना है। कोट भी बनवाना है। मास्टर रहीम का टोपी के बिना काम नहीं चल सकता। अम्माँ के सब कपड़े चले गए हैं—बनवाने पड़ेंगे और उनकी कल्पना और भी विस्तृत होने लगती.......!

आशा! मानव का पीछा आशा सहज ही में नहीं छोड़ती। जुआरी बार-बार हारेगा पर पाँसा फेंकने से चूक नहीं सकता। पिंजड़े का पक्षी यह जानता है कि उसकी मुक्ति सहज नहीं फिर भी अपने पंख फड़फड़ाने की चेष्टा करता है। बीहड़ मरुस्थल में भटकता हुआ राहगीर यह जानते हुए भी कि वहाँ पानी का लेश न होगा, मृगतृष्णा के पीछे व्याकुल-सा दौड़ता है। बार-बार मानव निराश होकर भी प्रत्याशा के बल पर ही ऊपर चढ़ सका है। जिस प्रकार पतंग डोर के सहारे नीचे गिरती हुई भी सँभल कर ऊपर चढ़ने लगती है, उसी प्रकार मानव स्फूर्ति केन्द्र आशा की डोर ही है।

रहीमबेग ने अबकी बार ताँबे के हुक्के को रेहन रख पहेली की पूर्ति और फीस भेजी। उन्हें विश्वास था कि अबकी बार तो उनका हल मुहरबन्द हल से हूबहू मिल जायेगा। पर तकदीर ने साथ न दिया। एक अशुद्धि रह गई। इनाम मिला, पर नहीं के बराबर।

आज फिर पूर्तियें भरने बैठा है। उसी आशा से प्रेरित हो जिससे कि आज का मानव अपने अधिकार प्राप्ति की कल्पना कर क्षणिक सुख में मग्न हो जाता है—पर समाज की वीभत्सता उसे दम लेने दे तब तो? और फिर भी उसे अप्राप्य सुख की कल्पना कर आशा की डोर में रहना भाता है।

दिलबागसिंह की हत्या

डॉ॰ सुदर्शन मजीठिया

लालसिंह ने अपनी पत्नी का घूँघट उठाया और उसे एक-क्षण के लिए एक-टक देखता ही रह गया। उसने स्वप्न में भी आशा नहीं की थी कि उसकी पत्नी इतनी सुन्दर और सुघड़ होगी। वह रात्रि के समय तेज प्रकाश में काला चश्मा लगाए हुए बैठी थी। उसके चेहरे पर काला चश्मा बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था। लालसिंह ने लपक कर उसका चश्मा उतार लिया और देखकर दंग रह गया। उसने कहा "एं......तुम अंधी हो......!"

"हाँ......मेरे मालिक मैं अंधी ही हूँ।" लालसिंह की पत्नी ने कहा। उसकी आँखें आँसुओं से तर थीं। वह जमीन पर सिर झुकाए बैठी थी और उसके सामने माझे का जाट लालसिंह अपनी भारी भरकम देह लिए हुए, नई रेशमी तहमत, कुर्त्ता और कलफदार अभ्रक लगी हुई चमकदार पगड़ी पहने हुए खड़ा

था। लालसिंह के हाथ से चश्मा छूट गया । वह जितने उत्साह से अपनी पत्नी के पास आया था, उतना ही निरुत्साहित हो लौट गया।

लालसिंह को लगा कि जैसे वातावरण में सहसा गर्मी और घुटन बढ़ गई है। वह क्रोध, दुःख और संशय से भर उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह आज अपने आप में ही पराजित हो गया है । वह छलाँग मारकर उठा और अपनी कृपाण दबाकर गुरुद्वारे की ओर बढ़ गया । वह बुदबुदा उठा—"दिलबागसिंह ! तूने मुझे अंधी लड़की टिका दी। धोखेबाज...... मक्कार मुझसे ही धोखा करना था । तेरा खून कर अगर तेरी लाश को मैंने सड़क पर न घसीटा तो, तो मेरा नाम लालसिंह नहीं।"

आधी रात को गुरुद्वारे में लालसिंह को देखकर ग्रंथि कश्मीरासिंह ने आश्चर्य व्यक्त किया और पूछा—"सरदार लालसियाँ.......की गल्ल.......ए....... ।"

लालसिंह मौन था। वह धम्म से पीपल के वृक्ष के नीचे जा बैठा। ग्रंथि ने पुनः कहा—"लालसिंह बोलता क्यों नहीं कि क्या हुआ ?"

और लालसिंह था कि ग्रन्थि को अपलक ही देखे जा रहा था। कुर्ते की जेब से एक रुपया निकाल कर ग्रन्थि की ओर फेंकते हुए उसने कहा—"बाब्बे.......काके से रुपये की भंग मँगा, आज तेरे गुरुद्वारे में ही गुरु के दर्शन करूँगा।"

ग्रन्थि की समझ में मामला नहीं आया । खैर, उसने भी अधिक समय खराब करना उचित नहीं समझा । उसके लिए लालसिंह की तकलीफ का पता लगाने की अपेक्षा भाँग का मोह कहीं अधिक था।

भाँग घुटी और दोनों पीकर मस्त हो गए। लालसिंह ने भंग पीकर गाना शुरू कर दिया—"सिक्खाँ नूं······परखन लई······ मौत कसौटिया··········

·······मरन नूं न डरे खालसा······· ।"

लालसिंह ने अपनी कृपाण म्यान से निकाल कर जमीन में भोंक दी और कह उठा —"बाब्बे, यदि तेरा कोई खून कर दे तो, तो तू क्या करेगा ?"

"ले, जब खून ही हो गया तो करने को ही क्या रह गया ? अपनी ही बात कर। तेने पाँच-पाँच खून कर लिए तो तेरा किसने क्या कर लिया ?"

"बाब्बे आज मेरा ही खून······हो गया।"

"और तू देखता ही रह गया !"

लालसिंह ने मिट्टी से कृपाड़ उखाड़ ली।

"तेरा खून हो गया है······और एक तू है······कि अब तक चुपचाप बैठा है······ ।"

"यही तो रोना है।" अबकी पीपल के तने में कृपाण चुभाते हुए लालसिंह ने कहा। थोड़ी देर बाद लालसिंह पैंतरा बदलकर उठ खड़ा हुआ और चिल्ला उठा—"गुरु गोविंदसिंह ने मुझे यह कृपाण दी है और कहा है कि जा पुत्तर दिलबागसिह का खून करके आ। ·······कर्नल······मक्कार·······धोखेबाज है। बाब्बा, कश्मीरासिंह अगर मेरी कृपाण ने कामयाबी से दिलबागसिह का खून पी लिया तो रुपये इक्कावन का कड़ाह परशाद चढ़ाकर मैं खंड पाठ कराऊँगा। गुरु साहब के सारे रुमाल नए करवा दूंगा।" और लालसिंह हवा में अपनी कृपाण लहराता हुआ निकल गया। ग्रंथि की समझ में कुछ नहीं आया किन्तु फिर भी वह लालसिंह के शब्दों से मतलब निकालने का प्रयास करने

लगा। उसने सोचा—"दिलबागसिंह ! वह तो इसका ससुर है। अभी कल तो उसकी शादी हुई थी। ·······फिर आज क्या हो गया ? जरूर कोई गड़बड़ हुई होगी।"

किंतु अब तक तो लालसिंह जा चुका था।

लालसिंह अपने इलाके का मशहूर खूनी था। पाँच-पाँच खून कर साफ बच जाना उसी का काम था। सवा छः फुट का 'चोर जैसा' लंबा तगड़ा जवान, जब गली से गुजरता तो जमीन भी काँपती नजर आती थी। लोगों का कहना था कि वह सिंगापुर से काफी पैसा लेकर आया था।

लालसिंह के जाते ही उसकी पत्नी सिहर उठी। वह जानती थी कि उसके अंधेपन का सवाल आज नहीं तो कल अवश्य उठेगा। वह इस बात को भी अच्छी तरह से जानती थी कि धोखा देकर किसी को भी अधिक देर ठगा नहीं जा सकता। शादी की पहली ही रात को उसके मन में पति के लिए प्रेम की प्रतीक्षा नाम की कोई चीज ही नहीं थी। उल्टे उसके मन में एक भयानक भय समाया हुआ था कि उसे अंधी देखकर उसका पति क्या समझेगा और क्या महसूस करेगा ? इतने बड़े संसार में अंधी का पति होना कौन स्वीकार करेगा ? और वह भी धोखे से। वह जानती थी उसके पिता ने लालसिंह को धोखा दिया था·······लेकिन वह कर ही क्या सकती थी ? उसने रो-रोकर अपनी जान आधी कर दी थी और उसने अपने पिता से कहा भी था कि वे ऐसा न करें या उसे कम से कम एक बार तो लालसिंह से मिलने का मौका दें। लेकिन उसके संसारी पिता का कहना था कि यह लड़की तो पगली है। बना बनाया खेल बिगाड़ देगी। यदि इसकी आँखें होती तो क्या मैं लालसिंह जैसे गँवार के पल्ले बाँधता ? न होने से तो खैर अच्छा है। लड़की

अपने घर जाएगी। लड़की का घर उसके पति का ही घर होता है।

× × ×

लालसिंह की पत्नी हरचरण कौर डरते-डरते ससुराल तक आई थी। जब उसके अंधेपन का रहस्य खुल गया तो उसके मन से एक बोझ हल्का हो गया। अब तो वह उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में थी! जो भी आफत आए उसे वह सहने के लिए तैयार थी। ईश्वर ने उसे औरत बनाया था और वह भी अंधी औरत।

रात काफी देर गए लालसिंह लौटा। उसने आते ही कहा—"आज तेरे बाप के घर जा रहा हूँ।"

"मेरे पिता आपका स्वागत ही करेंगे।"

"वैसा ही स्वागत जैसा कि एक अंधी लड़की टिका कर दिया है?"

"नहीं, मेरे मालिक, इस तरह नहीं।"

"वह मेरा स्वागत क्या करेगा? मैं करूँगा उसका स्वागत इस कृपाण से।"

"मालिक! फसाद की जड़ तो मैं ही हूँ। मेरे ही गले पर कृपाण चला दो न! वहाँ तक जाने की आपको जरूरत ही नहीं पड़ेगी। मेरे जीने का कोई फायदा नहीं, मालिक। मैं तो अपने पिता से कहती रही कि यदि पैदा होते ही मेरा गला घोंट दिया होता तो कहीं अच्छा होता।"

"गला घुटवा ही लिया होता तो अच्छा होता, कम से कम तेरा बाप बदनामी से तो बच जाता।"

"मेरे मालिक, यदि शादी से पहले आपसे मिलने का मौका मुझे मिला होता तो ये अंधी आँखें मैं आपके सामने जरूर पेश कर देती। आपके साथ कम से कम ऐसा धोखा कभी न होता !"

लालसिंह ने देखा कि उसकी पत्नी के काले चश्मे के नीचे से टपाटप आँसू गिर रहे हैं। परन्तु वे आँसू लालसिंह पर उसी तरह असर कर रहे थे जैसे उल्टे घड़े पर पानी। उसने गरजते हुए पुनः कहा, "तेरा बाप सरदार है लेकिन उससे कहना कि अपना सिर मुड़ा ले। फौज में क्या करता रहा ? सैल्यूट मार मार कर ही अफसरी की या वहाँ भी धोखा देना ही सीखा। अगर वह सरदार होता–मर्द होता तो ललकार कर कहता "लालसिंह मेरी लड़की अंधी है, बोल करेगा इससे शादी" और मैं आगे बढ़कर कहता, ला कर्नल दे, तेरी लड़की का हाथ, तू क्या याद रखेगा अभी दुनिया से पानीदार लोग खत्म नहीं हुए हैं।" लेकिन उस डरपोक ने मुझे धोखा दिया। उसने शायद लालसिंह का नाम नहीं सुना। इन्हीं हाथों से मैंने पाँच पाँच खून किए हैं। और छठवाँ होगा तेरे बाप का। धोखा देने का अंजाम तो उसको देकर आऊँगा ही। वाहगुरु की कसम। लानत है तेरे बाप पर।"

लालसिंह को लगा जैसे वह अब तक वह खड़ा हो चुका है। और उसकी पत्नी ने उसके पैर पकड़ लिए हैं। वह कहती है "मेरे मालिक तुम दूसरी शादी कर लो मैं चूँ तक नहीं करूँगी। आप दोनों की इन्हीं हाथों से.... अपनी अन्धी आँखों से आजन्म सेवा करती रहूँगी। दो रोटियों का ही तो खर्च आखिर आप पर पड़ेगा ! रोज दो सूखी रोटियाँ खाकर ही मेरी जिंदगी कट जाएगी मैं तो अंधी हूँ। मेरे लिए तो दुनिया का कोई अर्थ नहीं है मुझे ही मारकर अपना क्रोध शांत क्यों नहीं करते ?";

"खैर तू तो सामने ही है। आखिर जाएगी कहाँ ? तेरे बाप का खून कर जन्म भर तुझे रुला रुला कर मारूँगा।"

लालसिंह का स्वप्न टूटा। वह हड़बड़ा कर उठा। चारों ओर अंधेरा था। घड़ी के काँटे टिक टिक कर अनवरत रूप से सरकते जा रहे थे।

उसे लगा कि जैसे अभी अभी ही उसकी पत्नी उसके कमरे से रोकर गई है। उसने अपनी पत्नी के कमरे की रोशनी जलती हुई देखी। वह उस ओर बढ़ गया। उसने देखा कि उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा करते करते सो गई है। शरीर पर सारे कपड़े अस्त व्यस्त हो रहे थे। परन्तु उसका चेहरा पुनः लालसिंह को प्रभावित किए बिना न रह सका। उसके आँसू सूख कर उसके गालों पर जम चुके थे। उसकी आँखें नहीं थीं, उसने संसार को नहीं देखा था। और शायद अच्छा ही किया था, क्योंकि संसार को न देखने के कारण उसके चेहरे पर एक अजनबी सा भोलापन था।

सुबह लालसिंह का चेहरा उतरा था किन्तु फिर भी क्रोध से उसकी आँखें लाल थीं। लालसिंह की पत्नी उसके लिए नौकरानी की सहायता से चाय लेकर आई थी। लालसिंह ने कप को उल्टा हाथ मार कर गिरा दिया। चाय के गरम छींटे कुछ उस पर आए और कुछ उसकी पत्नी पर गिरे किन्तु उसकी पत्नी निश्चल रूप से कप प्लेट के टूटे हुए टुकड़ों को सँवारने का काम करती रही। वह टटोल-टटोल कर एक-एक टुकड़ा जमा कर रही थी। चीनी का एक टुकड़ा उसकी एक अंगली में बुरी तरह से चुभ गया परन्तु बिना किसी सीत्कार के वह कप प्लेट के टुकड़े जमा कर ले जाने लगी तो लालसिंह ने कहा "निकला न हाथ से खून।"

"किसी न किसी का तो खून निकलना ही था। आपको ये टुकड़े चुभते उससे तो अच्छा ही था कि मुझे चुभे……मुझ अंधी के खून……को आखिर क्या कीमत है ?"

बीबी हरचरण कौर चली तो गई....परन्तु लालसिंह न जाने खड़ा-खड़ा क्या सोचता रहा।

उसे लगा कि जैसे वह अपने ही घेरे में परास्त हो गया है। वह अपनी पत्नी की तस्वीर को अपने मन से निकाल देना चाहता था। परन्तु न जाने क्यों वही हसरत से भरा हुआ अंधा चेहरा सामने से हटाए नहीं हटता था। उसके मन में वह जगह बनाता चला जा रहा था। लालसिंह सोचता है कि काश उसकी पत्नी की आँखें होती। आज तक उसने गोरे गुलाबी गालों के बारे में सुना ही सुना था। आज उन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखने का मौका भी आया था। उसका दिल मचल उठा। उसे लगा कि आखिर वह अपनी पत्नी को अपनी बाहों में भरकर देखे कि उसकी मांसल अनुभूति कैसी होती है।

लालसिंह जैसे ही सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आता तो उसकी पदआहट से ही उसकी पत्नी पहचान लेती और सिर पर पल्ला ले लेती साथ ही सतर्क हो बैठ जाती परन्तु लालसिंह उधर ध्यान नहीं देता और काम समाप्त होते ही कमरे से चला जाता।

× × ×

दिलबागसिंह को सुनाई देता है कि जैसे उसे कोई बुला रहा है। लालसिंह अकेला ही दृढ़ निश्चय कर दिलबागसिंह के दरवाजे पर अपनी नंगी कृपाण लिए खड़ा था। उसने डट कर शराब पी रखी थी। उस दिन गाड़ी लेट थी। जब वह रात को गाँव में पहुँचा तो सारा गाँव सो चुका था। अलबत् दो-एक कुत्तों

के भौंकने की आवाजें अवश्य आ जाती थीं। लालसिंह ने दो तीन आवाजें दीं, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला । लालसिंह की हवेली का बड़ा सा टीन का फाटक बंद था । लालसिंह बाहर खड़ा है.........

........सहसा उसके सामने उसकी पत्नी की तस्वीर घूम जाती है.........जो कि उससे रहम भीख माँग रही है।.........जैसे कि वह कह रही हो "मेरा बाप तो धोखेबाज और मक्कार था, परन्तु मेरे मालिक तुम तो पानीदार हो.........फिर क्यों अपने हाथ का पानी उतरने देते हो ? क्या तुम इतने कमजोर हो कि मेरे सरीखी औरत को दो रोटियाँ भी नहीं खिला सकते ? आखिर मैं तुम्हारा क्या बिगाड़ती हूँ ? जहाँ इतनी जिंदगी मैंने रो· ....रोकर गुजार दी है वहाँ बाकी जिन्दगी भी तुम्हारा नमक खाकर गुजार दूँगी। कुछ नहीं तो मुझे जहाँ से लाए हो वहीं छोड़ आओ। धोखा देने का परिणाम उन्हें ही भुगतने दो। भले ही लोग अपनी मर्यादाएँ तोड़ दें, किन्तु पानीदार लोग तो केवल इसीलिए ही अपनी सीमाएँ और मर्यादाएँ नहीं तोड़ते !"

और लालसिंह जैसे प्रत्युत्तर देता है। "बीबी हरचरण रो.... मत......तू अंधी है, पर तेरा पति अंधा नहीं है......तेरी किस्मत अंधी नहीं है। मेरे हाथों का पानी अभी उतरा नहीं है। तू मेरे बेटों की माँ बनेगी। वे बेटे, जो मेरे साथ मेरे खेतों में हल चलाएँगे।......तू......आखिर मुझसे क्यों डरती है ? कुछ नहीं तो हीर गाकर तेरे साथ सारी जिंदगी काट दूँगा।"

लालसिंह चुप खड़ा है...। सहसा टीन का दरवाजा खुलता है और दिलबागसिंह कहता है "कौन......?"

कोई उत्तर नहीं

एक गहरा सन्नाटा…दूर से आनेवाले मद्धिम से प्रकाश में वह लालसिंह को पहचानता है।……"अरे सरदार लालसिंह…… अंदर आओ……

लालसिंह बुत की तरह खड़ा है।

लालसिंह दिलबागसिंह को घूरे जा रहा था। उसने किरपाण म्यान में रख ली और अंधेरे में ही वह बुदबुदाया "धोखेबाज…!" दिलबागसिंह आवाजें दिए चला जा रहा था पर लालसिंह वापिस मुड़ चुका था।

इण्टरव्यू

डॉ. मदनगोपाल गुप्त

"मुंशीजी, डाक ले जाइए" एक परिचित-सी आवाज ने मुंशी स्वरूपचन्द्र को अपनी ओर आकृष्ट किया। बेड-टी लेकर अभी वे बिस्तर पर ही बैठे-बैठे समाचार पत्रों में उलझे हुए थे। खाट के निकट जमीन पर बैठी हुई बेबी निर्जीव गुड़ियों में सजीवता का अनुभव करती हुई उनसे बातें करने में लगी हुई थी। द्वार की ओर शीघ्रता से जाती हुई पत्नी को देखकर मुंशीजी ने समाचार पत्र को छोड़ना उचित न समझा।

"राम राम, टीचिंग एक्सपीरियेन्स का कालेज-स्कूल वाले कोई मूल्यांकन करना ही नहीं जानते। जो भी विज्ञापन निकलता है, उसमें फर्स्टक्लास या सेकण्ड क्लास के ही प्रार्थनापत्र माँगे जाते हैं। आज-कल के छोकरे जिन्हें कालेज के विद्यार्थियों की कौन कहे, प्राइमरी तक की कक्षाओं को पढ़ाने का अनुभव नहीं, बड़े-बड़े कालेजों में उच्च वेतन पर ले लिए जाते हैं।"

समाचार पत्र का विज्ञापन पढ़ते-पढ़ते स्वरूपचन्द्रजी उपर्युक्त स्वागत-भाषण कर उठे कि इतने में पत्नी ने आकर एक रजिस्टर्ड पत्र अखबार के ऊपर रख दिया। लिफाफे पर क्वींस कालेज की मुहर देखकर उनके मत्थे पर खाल से बनी सिकुड़ी हुई तीनों वलें एकाएक विलीन हो गयीं। जल्दी से लिफाफे को खोलकर पढ़ा तो उसमें इंटरव्यू की सूचना थी जिसे पढ़ते-पढ़ते चेहरे पर मुस्कान की किरणें ऐसी दौड़ गयीं मानों कठोर परिश्रम से प्राप्त हो सकने वाला स्वर्णलोष्ठ अनायास ही उनके घर की कूड़ेदकनी में पड़ा मिल गया हो और प्रफुल्लित कमलकोष से समता करनेवाले उनके मुख से किसी कवि की यह पंक्ति श्रीमतीजी को लक्ष्य करते हुए निकल पड़ी—

"देख, गुन ना हिरानो गुन-गाहक हिरानो है।"

मुंशीजी की पत्नी को यह समझते देर नहीं लगी कि वे जिस कालेज के हाईस्कूल सेक्शन में वर्षों से कार्य करते आ रहे हैं, उसके कालेज के सेक्शन से प्रार्थना पत्र के उत्तर रूप में वह इण्टरव्यू-लेटर आ-ा है। साथ ही इस वर्ष भेजे गये ३०–३५ प्रार्थनापत्रों में से संभवतः उन्हीं के सम्बन्ध में सहानुभूतिपूर्वक विचार किया गया है; अन्यथा कालेज की लेक्चररशिप के लिए न्यूनतम योग्यता एम ए. की द्वितीय श्रेणी ही है।

मुंशीजी के आनन्द का ठिकाना न रहा। न जाने कितने कालेजों को प्रार्थना पत्र भेजे होंगे। कितनी मिन्नतें की होंगी किन्तु सूखा उत्तर दे देने अथवा बिलकुल मौन रह जाने के अतिरिक्त किसी ने झूठ-मूठ के लिए भी इण्टरव्यू के लिए आज तक नहीं बुलाया। पत्नी को पुनः चाय बनाने का आर्डर देकर वे विचारों के आकाश में उड़ने लगे। हाँ, तो उन्होंने हाईस्कूल, इण्टर, बी. ए. तथा बी. टी. की परीक्षाएँ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं।

पता नहीं एम. ए. के परीक्षक भंग पीकर उनकी उत्तर-पुस्तकें देखने बैठे थे कि केवल चार-पाँच नम्बरों से उनका सेकण्ड क्लास रुक गया। वैसे उससे पहले की परीक्षाओं में प्रायः भाग्य ही साथ देता रहा कि छह-सात नम्बर ही उन्हें तृतीय श्रेणी से द्वितीय श्रेणी में ला बिठाते थे किन्तु इस अंतिम परीक्षा में वह साथ न दे सका। अब जनता का राज्य हो जाने से रेलवे-विभाग में थर्डक्लास की महिमा पहले से भले ही बढ़ गयी हो परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में अब उसका कोई मूल्य नहीं रहा। एम. ए. के इस थर्ड-क्लास की काली चादर द्वारा पूर्ववर्ती परीक्षाओं के सभी परिणाम ढक से जाते थे। पिछले पंद्रह वर्षों से हाईस्कूलों में निरंतर अध्यापन कार्य करते आ रहे हैं, तथापि उसके अनुभव की सफेदी उक्त कालिमा को किंचित कम कर सकने में सफल न हो सकी। कालेज के मैनेजर के लड़के को पूरे साल भर वे इसी आशा से मुफ्त में ट्यूशन पढ़ाते आ रहे हैं। जब कभी मैनेजर साहब की पत्नी उसके बदले में रुपये देने लगती तो वे अपनी आत्मीयता का तथा उदारतापूर्वक सेवा का बहाना बनाकर टाल जाते। इसका एक सुपरिणाम अवश्य हुआ। पिछले चार-पाँच महीनों के बीच कालेज की नितांत आवश्यकता पड़ने पर वे वहाँ पचास रुपये मासिक पर पार्ट-टाइम पढ़ाते रहे। वे यह समझते थे कि इस प्रकार के कार्यों के जलकण डालकर अपनी आशा-लता को हरा-भरा कर सकते हैं। सहयोगी अध्यापकों की निराश करने वाली बातें सुनकर यद्यपि चेहरे पर प्रयत्नपूर्वक कोई अन्तर न पड़ने देते, तथापि भीतर ही भीतर उनका अन्तःकरण आशा-निराशा के झूले में झूलता रहता था। कल्पना के आकाश में उड़ने और उपर्युक्त प्रकार से आत्म-विश्लेषण करने के पश्चात् मुंशीजी के पैर धरती पर लगे और सोचने लगे कि उक्त स्थान के लिए आने

वाले प्रार्थना पत्रों में से चार-पाँच तो फर्स्ट क्लास वाले होंगे तथा शेष सभी सेकण्ड क्लास वाले। अध्यापन-कार्य का अनुभव भी कईयों को प्राप्त है। इन सब के बीच यदि कोई अपवाद है तो वह हमारे मुंशीजी का ही है।

परन्तु आज मिलने वाले इण्टरव्यू लेटर ने उनकी आशा को गौरव के शिखर पर चढ़ने का अवसर दिया था। वे सोचने लगे कि जब मैनेजर ने अनेक अच्छे क्लास वाले प्रत्याशियों के प्रार्थना पत्र सामने रखकर भी उन्हें इण्टरव्यू के लिए बुलाया है तो यह निश्चित-सा प्रतीत होता है कि वे उन्हें ही लेने के इच्छुक होंगे। इस वाक्य को मन ही मन बार-बार दुहराते हुए वे यह सोचकर उमंगित हो उठे कि आखिर पाँच महीने पढ़ाने के बाद उनका "क्लेम" भी तो माना जा सकता है तथा दूसरे मेरे अध्यापन का पंद्रह वर्षीय अनुभव तो अवश्य ही विजयी बनायेगा।

हाईस्कूल के अध्यापक के रूप में कुर्ता और पायजामा उनकी चिरपरिचित तथा प्रिय पोशाक रही किन्तु जब से कालेज-सेक्शन में भी जाने लगे तो उन्होंने तदनुकूल वस्त्र पैंट-बुशर्ट आदि सिलवा लिये थे। इन वस्त्रों को स्वच्छ तथा व्यवस्थित रखने की हिदायत भी पत्नी को दे रखी थी। किन्तु दस दिन बाद होने वाले इण्टरव्यू में अब स्थायी नियुक्ति की बात है। उनका क्लेम भी है। वेतन भी इतना मिलेगा जितना वे टीचरी के वेतन के साथ दो-तीन ट्यूशन करके धनार्जन कर पाते हैं। कहीं कपड़ों के कारण अपना पक्ष निर्बल न पड़ जाय, इस आशंका से उसी दिन सिल्किन सूट का कपड़ा ख़रीदा तथा तुरन्त दर्जी को अच्छा सिलने की सूचना देकर आये।

एक-एक करके दिन बीतते गये। इन पूरे दस दिनों के बीच दोपहर में भोजन करने तथा रात्रि में सोने के अतिरिक्त किसी

ने उन्हें घर पर रुकते या आराम करते न देखा होगा । सबेरे चाय पीकर घर से निकलते तथा दोपहर के बारह-साढ़े बारह बजे घर आते तथा फिर दो बजे निकलते कि रात दस बजे के पहले घर पर आती हुई उनकी साइकिल कभी ही शायद दिखती। मैनेजिंग कमेटी के एक एक सदस्य से लेकर कालेज के प्रिंसिपल तथा प्रायः सभी वरिष्ठ प्रोफेसरों के बीच विनम्रभाव से उठते-बैठते उन्हें उन दिनों देखा जा सकता था।

इण्टरव्यू से पाँच दिन पूर्व सूट भी सिलकर आ गयी जिसके लिये श्रीमतीजी को सख्त ताकीद कर दी गयी थी कि पुनः एक बार स्तरी करके बड़े बक्से में सँभाल कर रख दी जाय। जुलाई की पहली तारीख आखिर आ ही गयी । सात बजे से पहले बिस्तर न छोड़ने वाले मुंशीजी आज पाँज बजे ही उठकर दाढ़ी बनाने बैठ गये ।

"इण्टरव्यू तो डेढ़ बजे से है, उसी समय डाढ़ी बनाते ।" पत्नी ने कहा !

'तो क्या हुआ एक बार फिर से बना लूँगा' कहते हुए शीघ्रता से डाढ़ी बनाकर उठे। स्नान किया और एकाग्र मन से पूजा करने बैठ गये। घंटे भर बैठ कर रामायण का पाठ किया तथा मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी होकर भी पाठ पूरा करने के बाद आज शिवालय जाकर उनके शिव नाम की सार्थकता का संकल्प ले भगवान शंकर पर जल चढ़ाया । पत्थर के भगवान से छुट्टी पाकर अब वे आज की प्रतियोगिता के भगवान की ओर उन्मुख हुए। जल्दी से कपड़े पहने तथा साइकिल उठाकर चल दिये एक बार सम्बन्धित व्यक्तियों से पुनः नम्र निवेदन करने और अपना स्मरण दिलाने के लिए। ग्यारह बजे घर लौटकर पुनः हजामत की और स्नान-भोजन करके पत्नी से नया वाला सूट माँगा।

'हैं, इसमें सलवटें कैसे पड़ गयीं ?' नाक-भौं सिकोड़ते हुए मुंशीजी तेज स्वर में बोले।

"रखने में कुछ असावधानी हो गयी, वैसे तो मैंने बड़े प्रयत्न से सँभालकर रखा था।"

डरते-डरते पत्नी ने उत्तर दिया। अब कोई चारा न था। दूसरे उपयुक्त कपड़े न होने की विवशता ने मुंशीजी को एक बार व्यथित-सा कर दिया।

"कुछ भी हो, है तो सिल्कैन" कहते हुए उसे ही पहन कर चल दिये कॉलेज की ओर। पत्नी ने उनके चलते चलते भगवान का सवा रुपये का प्रसाद चढ़ाने का वचन ले लिया।

प्रिंसिपल-आफिस के बाहर वाले बराम्दे में १५-२० प्रत्याशी बैठे हुए थे। सहायक क्लर्क एक-एक करके सभी के प्रमाण-पत्रों की मूल प्रतियाँ देख रहा था। मुंशीजी एक बार अन्य प्रत्याशियों की वेश-भूषा तथा मुखमुद्रा पर दृष्टि डालते और फिर एक बार अपने कपड़ों की ओर देखते। घड़ी की सुइयों ने डेढ़ बजाये। प्रतीक्षकों की उत्सुकता बढ़ चली। मुंशीजी को ज्ञात हुआ कि उनका नँबर सातवाँ है एक बार विचार आया कि 'हैं मेरा नँबर सातवाँ ? और उधर प्रबंध समिति के सदस्य यथासम्भव ले लेने का वचन दे चुके हैं। यह कैसी विचित्र बात है।" किन्तु थोड़ी देर में प्रत्याशियों के प्रथम और अंतिम क्रमांकों का तुलनात्मक अध्ययन किया तो जान में जान आई कि क्रमांकों का अस्तित्व शैक्षणिक योग्यता आदि के विचार पर आधारित नहीं है।

प्राचीनकाल के स्वयंवर-सभा में बैठे हुए राजकुमारों की आकुल प्रतीक्षा की समान वहाँ के उत्सुकता-भरे वातावरण के बीच इण्टरव्यू आरम्भ हो गया। एक-एक करके प्रत्याशी बुलाये जाने लगे। स्वरूपचन्द्रजी ने सोचा कि अभी समय है। क्यों न पुनः तत्सँबंधी तैयारी कर ली जाय। निदान कभी वे अपनी

प्राइवेट नोटबुक के पन्ने उलटने लगते, तो कभी यों ही अपने-आप कुछ बुद-बुदा उठते और इस प्रकार वे, सम्भावित प्रश्नों के उत्तर सोचने तथा धीरे-धीरे उन्हें कहकर दुहराने लगे, जैसे नाटक का कोई पात्र रिहर्सल के पूर्व अपने पाठ का स्मरण करता और ढंग से कहने का चुपचाप अभ्यास करता है। इतने में क्लर्क ने आकर मुंशी स्वरूपचन्द्रजी का नाम पुकारा।

"हैं इतनी जल्दी नम्बर आ गया" कहते-कहते उन्होंने कलाई पर बँधी घड़ी पर दृष्टि डाली तो ज्ञात हुआ कि इण्टरव्यू को आरम्भ हुए एक घंटा बीत चुका है। अन्दर जाते ही झुककर सब को नमस्कार करके अपनी विनम्रता और शालीनता का परिचय दिया। मुंशीजी को सुन्दर गद्दीदार कुर्सी बैठने को मिली। सामने मैनेजर साहब, कॉलेज के प्रिंसिपल, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा प्रबंध-समिति के दो सदस्य बैठे हुए थे। उनके जीवन का यह पहला ही अवसर था अपने प्रकार का। इन सब से अलग-अलग तो मिले थे किन्तु इस प्रकार एक साथ नहीं। पैरों में कम्पन होने लगा। अपने को संयत करते-करते उन पर प्रश्नों की झड़ी देखते ही देखते लग गयी। वे एक प्रश्न का उत्तर समाप्त करने को होते कि दूसरी ओर से अन्य प्रश्न पूछ लिया जाता। एक बार ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों वे सभी अपने इस पूर्व-परिचित को भी अपदस्थ करने में तुल गये हों।

इण्टरव्यू कक्ष में प्रवेश करने से पूर्व ही उन्होंने सोच लिया था कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर वे अवश्य देंगे, चाहे सही हो या गलत, देते जायेंगे और रुकेंगे नहीं। इस विचार ने उक्त निश्चिय को और भी बल प्रदान किया था कि सेलेक्शन कमेटी के सभी सदस्य कोई विश्वकोष नहीं हैं और सभी को सभी प्रश्नों के उत्तर तो ज्ञात न होंगे।

वड़े हाव-भाव से मुस्कुराते हुए वे सभी प्रश्नों के उत्तर देते गये। अंत में मैनेजर ने धन्यवाद दिया जिसे अपने इण्टरव्यू की समाप्ति का संकेत समझकर वे सब को धन्यवाद देते हुए बाहर आये। सभी का इण्टरव्यू समाप्त हो जाने तक रुकने की सूचना के अनुसार प्रतीक्षा के कमरे में ठहरना आवश्यक था। अतः इस अवधि में बाहर जाने के पश्चात् जब उन्होंने अपने उत्तरों की जाँच नोटबुक के आधार पर की तो मुंशीजी को ज्ञात हुआ कि कुछ प्रश्न तो उनकी आशा-अपेक्षा के बिलकुल विपरीत थे कुछ के उत्तर अप्रासंगिक रूप में दे आये और कुछ ठीक भी थे। एक बार हृदय बैठता-सा प्रतीत हुआ किन्तु सदस्यों से सँबंधित उपर्युक्त धारणा के स्मरण तथा अन्य प्रत्याशियों द्वारा भी सम्भावित भूलों का विचार करके उनकी आशा-लता मुरझायी न थी। अन्य प्रत्याशियों से उनकी आपबीती अवस्था की जानकारी प्राप्त करने का यत्न किया तो उन्हें यह समझकर संतोष ही मिला कि प्रश्न तो सभी से कठिन ही पूछे गये हैं।

मुंशीजी की उत्सुकता क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी। निजी सफलता का अनुमान करने वाले प्रत्याशियों की बात सुनकर वे अंदर से दहल जाते किन्तु प्रत्यक्ष में मंगलकामना-सूचक दो चार शब्द कह देते और निराशापूर्ण बात कहने वाले प्रत्याशी को ढाँढ़स बँधाते हुए अन्दर से आनंदित भी होते थे। घड़ी ने चार बजाये और उधर हेडक्लर्क फाइल हाथ में लिए आता हुआ दिखायी दिया जिस पर सभी की दृष्टि एक साथ गड़ गयी। उसने आते ही श्री क्षेमेन्द्रकुमार के सफल होने तथा शीघ्र ही ज्वाइन करने की सूचना दी। एक झटके में ही मुंशीजी की आशा लता पर तुषारापात हो गया। "मनचेती नहिं होत है, प्रभुचेती तत्काल" का वाक्य मन में दुहराते हुए उल्टे पाँव घर आये।

आतुरता से पति के आगमन की राह देखती हुई सुमन सोच रही थी कि आज का दिन पहले से कुछ नया ही होगा । किन्तु मुंशीजी ने घर आते ही बड़ी अन्यमनस्कता के साथ घड़ी उतारी और कहा जाकर "उसे श्यामू के घर पहुँचा दे ।"

"जल्दी क्या है, पहुँचा दूँगी । यदि थोड़ी देर के लिये माँग लिया तो क्या कुछ और देर से लौटाने पर अविश्वास कर बैठेंगे ? पहले यह तो बताइये, सब ठीक हो गया है ना ?" मुस्कुराते हुए सुमन ने पूछा ।

स्वरूपचन्द्रजी को मानो एक साथ सिर से लेकर पेर तक सैकड़ों बिच्छुओं ने डंक मार दिया हो । शब्द तो नहीं, पहले आँखों से मुक्ताकण ही निकलकर करुणा-विगलित हृदय की मूककथा मुखरित कर उठे । यत्न तो बहुत किया ध्वनि-संकेतों से उत्तर देने का, परन्तु हृदय के उन दो द्वारों ने वाणी का अधिकार अपने ही हाथ में रखा ।

"सुमन, अब अध्यापन के क्षेत्र में भावी उन्नति की आशा मैंने छोड़ दी है । अब कालेज-सर्विस के लिए कहीं भी प्रार्थना-पत्र देने से कोई लाभ नहीं है ।"

उपर्युक्त वाक्य काफी समय के बाद मुंशीजी बोले । अब कॉलेज में पार्ट-टाइम पढ़ाने का उनका अधिकार छिन चुका था । वही हाईस्कूल की कक्षाएँ पढ़ाने की दिन-प्रतिदिन की माथापच्ची लगी हुई है । मुंशीजी सोचते जा रहे थे—"क्या किया जाय, मेरी तकदीर ही यदि फूटी न होती तो काहे को एम. ए. में थर्डक्लास आया होता । काश, यह विचार पहले ही कर लिया होता ।" कहते कहते वे धम्म से बिस्तर पर बैठे और लेट गये । पिछले पन्द्रह-बीस दिनों की दौड़-धूप के पश्चात् आज प्रथम बार शरीर को विश्राम देने का अवसर मिला ।

इंटरव्यू

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल

लक्ष्मीचन्द ने जब अच्छी द्वितीय श्रेणी में बी० ए० पास किया तो घर के सभी लोगों को यह आशा हुई कि अब घर के बुरे दिन समाप्त हो गये। किन्तु जब छः महीने बीतते न बीतते लक्ष्मीचन्द के कई जोड़ी जूतों की तलियाँ घिस गयीं और घर में कोई भी कागज अर्जी लिखने के लिए बाकी न रह गया तो बड़े-बूढ़ों ने एक स्वर से हजार गालियाँ आजकल की पढ़ाई को दीं, सैकड़ों लानतें सरकार को भेजीं और लड़के को कपूत और निकम्मे की उपाधि से सहज ही विभूषित कर दिया। किन्तु इससे नौकरी तो मिलनी थी नहीं, न मिली ही। छै महीने और बीतते ही छोटे लड़के फकीरचन्द का इंटर का भी परीक्षाफल निकल गया। इसमें वह तृतीय श्रेणी में पास था। पढ़ाई की उपयोगिता की कलई घरवालों पर खुल ही चुकी थी, इसलिए फकीरचन्द की आगे की पढ़ाई की गाड़ी को न तो सिगनल ही मिला, न हरी झंडी ही।

अब दोनों भाई साथ-साथ अखबार देखते, साथ ही साथ अर्जियाँ टाइप करते और साथ ही साथ पोस्टमैन का इन्तजार करते किन्तु फकीरचन्द था लापरवाह और मस्तमौला और लक्ष्मीचन्द था इर्ष्यालु व फिकरमन्द। फकीरचन्द को वह नौकरी प्रेयसि के अध्याय में किसी प्रतिद्वन्द्वी से कम नहीं समझता था। किन्तु इससे फकीरचन्द का कुछ बनता बिगड़ता नहीं था। घरवालों की बात वह इस कान से सुनता और उस कान से निकाल देता। माँ उसे चिकना घड़ा कहती और चाची निखट्टू।

एक बार नहर विभाग से जब फकीरचन्द का इन्टरव्यू कॉल आया तो आधे शहर को खबर हो गई। लक्ष्मीचन्द ने तो प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि फकीरे को नौकरी मिल गई तो वह जहर खाकर प्राण दे देगा। फकीरे को नौकरी न मिले, इसके लिए उसने इन्टरव्यू के दिन भर हनुमानचालीसे का पाठ किया और गंगा मैया को पच्चीस नये पैसे का प्रसाद बोला। भला हो हनुमान बाबा का जिन्होंने उसकी लाज रख ली और फकीरे को नौकरी इसलिए न मिल सकी क्योंकि इण्टरव्यू वोर्ड के किसी मेम्बर को उसकी लम्बाई कुछ ज्यादा दिखाई दी। और जब एक बार लक्ष्मीचन्द का 'कॉल लेटर' आया तो वह सजधज कर घरवालों से यह कहकर इण्टरव्यू के लिए गया कि एक मित्र की शादी की दावत में जा रहा हूँ। किन्तु भाग्य की बात, सफलता उसे न मिली। पर इसका उसे अधिक खेद न हुआ क्योंकि किसी को इस बात की कानो-कान खबर तक न थी।

भाग्य की बात कि शहर के म्युनिसिपल ऑफिस स दोनों का एक साथ ही इण्टरव्यू लेटर आ गया। पहले तो एक छोटा-सा महाभारत इस बात पर घर में हुआ कि इण्टरव्यू में दोनों में से कौन जाये। जगह थी सिर्फ १५० रु० माहवार की, लेकिन

लोगों का कहना था कि ऊपरी आमदनी की गुंजाइश काफी है। फकीरचन्द को ऐसी नौकरी जरा भी पसन्द न थी और फिर लक्ष्मीचन्द का कहना था कि बड़ा होने के कारण पहला हक उसका है। परन्तु इस बात ने तूल पकड़ा तब, जबकि बूढ़ी दादी ने एक दिन का अनशन लक्ष्मीचन्द के विरोध में कर डाला, फकीरचन्द उनका लाड़ला जो था। वह तो कहो कि दादा ने इज्जत रख ली और पता नहीं कि क्या पढ़ा-पढ़ाकर दादी को मना ही लिया और अन्त में निश्चय किया गया कि लक्ष्मीचन्द ही इण्टरव्यू में जायेगा।

और फिर इण्टरव्यू के लिए जोरशोर की तैयारियाँ शुरू हो गई। लक्ष्मीचन्द के पिताजी ने दूसरे दिन से ही अखबार वाले से अखबार दे जाने के लिए कह दिया और वह भी अंग्रेजी का। लक्ष्मीचन्द के चाचा ने आफिस लाइब्रेरी से उस वर्ष की इयरबुक लाकर दी और साथ में यह ताकीद भी की कि जरा सम्भालकर पढ़े, लेकिन पढ़े जरूर। और वह भी उसका शब्द-ब-शब्द। किसी मित्र ने राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट पढ़ लेने को कहा तो किसी ने शिक्षा आयोग की हजारों पृष्ठ की रिपोर्ट को। एक मित्र ने तृतीय पंचवर्षीय योजना की पूरी जानकारी दो तीन दिन धुँआधार लेक्चर देकर लक्ष्मीचन्द कोपिला दी तो दूसरे मित्र ने चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा पर इतनी सूक्ष्मता से भाषण दिया कि वह घर भर को कंठस्थ हो गया। यदि अशोक मेहता ने उसे सुना होता तो सिर धुन-धुनकर रह जाते। मौसम से लेकर क्रिकेट मैच तक के समाचार ला-लाकर घर भर के लोग लक्ष्मीचन्द को देने लगे और बची-खुची कमी मित्रगण पूरी कर देते। इण्टरव्यू के अभी पन्द्रह दिन बाकी थे और इन पन्द्रह दिनों में लक्ष्मीचन्द को सभी कुछ याद कर लेना था। "हाइड्रो-

जन और आक्सीजन के किस अनुपात से पानी बनता है" से लेकर "जेनेवा पैक्ट मीटिंग में किस सदस्य ने क्या कहा", उसे याद कर लेना था। और यकीन न होगा आपको यदि मैं कहूँ कि इण्टरव्यू के दिन भारत की म्युनिसिपालिटियाँ ही नहीं, उनमें काम करने वाले हरिजनों तथा नालियों तक की संख्या लक्ष्मीचंद की अँगुलियों पर थी। इण्टरव्यू के लिए कौनसा सूट उसने पहना तथा सुबह को माली नीलकंठ का दर्शन कराने लाया और लक्ष्मीचन्द की माँ ने दही पेड़ा खिलाकर उसे इण्टरव्यू के लिए भेजा, इत्यादि छोटी-छोटी बातें बताकर मैं आपका समय नष्ट नहीं करूँगा।

इण्टरव्यू बोर्ड में तीन आदमी थे। एक तो म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष थे, जिनके खिलाफ तीन बार अविश्वास का प्रस्ताव पास होते-होते बचा था। दूसरे एक सेनीटरी इंस्पेक्टर थे, जिनको प्रत्येक मेहतर तथा मेहतरानी से हर महीने की प्रथम तारीख को एक रुपया तनख्वाह में से काटकर मिलता था। तीसरे थे म्युनिसिपल इंजीनियर, जिनकी आय का लेखा-जोखा यदि तीन एकाउन्टेंट भी मिलकर निकालने की चेष्टा करते तो भी असफल रहते।

एक थी जगह, तीन हजार आई थीं अर्जियाँ, जिसमें से तीस कैन्डीडेट्स इण्टरव्यू के लिए।

दस बजे से बैठे-बैठे कहीं तीन बजे जाकर इण्टरव्यू शुरू हुआ। पाँच बजे लक्ष्मीचन्द का नम्बर आया। अंदर जाकर बड़े ही शिष्टाचार से उसने अपने होने वाले हुजूरों को नमस्कार किया और बताई हुई कुर्सी को नोक पर बैठ गया। अगर कोई उस समय उसके सीने की धड़कन को सुनता तो आफिस के बाहर तक सुनाई देती।

अब जरा इण्टरव्यू का मुआयना कीजिये।

"आपका नाम ?" सेनीटरी इंस्पेक्टर ने पूछा।

"लक्ष्मीचन्द।"

"आप कहाँ तक पढ़े हैं ?"

"बी० ए० तक।"

हालाँकि यह सब बातें अर्जी में लिखी हुई थीं, फिर भी पूछी जा रही थीं।

"अच्छा यह बताइये आप कि ऊटकमंड राज्य में कौन-कौनसी ऋतुएँ होती हैं ?" अध्यक्ष ने पूछा।

लक्ष्मीचन्द घबरा गया—बंबई के प्रदर्शन में दस आदमी पुलिस की गोलियों से मारे गये, उसे याद था। नये चुनावों में किन-किन राज्यों में किस-किस दल की सरकार बनी और नित्य बदलने वाले मंत्रियों में आज प्रातःकाल कौनसे नये लिए गये, यह भी उसे याद था। किन्तु ऊटकमंड की ऋतुएँ ?

"अच्छा यह बताइये कि होनोलूलू में चालू वर्ष में कितने कच्चे पुल और कितने पक्के पुल बने ?" म्युनिसिपल इंजीनियर ने पूछा।

होनोलूलू में पुल, लक्ष्मीचन्द के पैरों तले की जमीन निकल गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना से चौथी की रूपरेखा तक में कितने बाँध बने, बनने थे, उसे सब याद था किन्तु होनोलूलू में पुल। उसे जरा भी याद नहीं आया। लक्ष्मीचन्द बताता तो क्या ? क्या इसीलिए सभी प्रार्थी उल्टा चेहरा लटकाये कमरे से बाहर निकल-निकलकर घर का रास्ता नापते थे ! होनोलूलू है किस राज्य में, यही लक्ष्मीचन्द को याद नहीं आया।

"अच्छा यह बताइये मिस्टर लक्ष्मीचन्द कि जब हैजामल प्लेगचंद की दुकान में आग लगी थी तो म्युनिसिपैल्टी के कितने दमकलों ने उसे बुझाया था ?" सेनीटरी इंस्पैक्टर ने पूछा।

लक्ष्मीचन्द के होश फाख्ता, पेंट की पेटी ढीली और तबियत अनारदाना हो गई। वह सोच रहे थे कि मैंने ये प्रश्न कहीं पढ़े क्यों नहीं। कितने सरल-सरल प्रश्न पूछे जा रहे हैं। किन्तु मुझे जरा भी पता नहीं। और अगर मैंने ये सब पढ़ा है तो कमबख्त इस समय याद क्यों नहीं आ रहे !

"आप तो गुम-सुम बैठे हैं ! आपने बी. ए. में पॉलिटिक्स तो पढ़ी है न ? अच्छा ये बताइये कि बघेलखंड में जब मेहतरों ने हड़ताल की थी तो उस वर्ष कितनी देशी खाद बनी थी ?" सेनीटरी इंस्पैक्टर ने फिर पूछा और गर्व से म्युनिसिपल अध्यक्ष और ऊँघते इंजीनियर की ओर देखा।

लक्ष्मीचन्द क्या जवाब देते ? मूर्ति की तरह बैठे न रहें तो क्या करें ? आखिर को उन्हें सधन्यवाद वापिस कर दिया गया। कमरे से बाहर आते ही मिला फकीरचन्द। लक्ष्मीचन्द को इतनी देर क्यों हो गई है ? जरूर ही उसकी नौकरी लग गई है इसलिए उसको रोक लिया गया है। यह सोचकर उसकी माँ ने फकीरे को भेज खबर लाने को कहा था।

फकीरचन्द के पूछने पर हालाँकि वह झल्लाया बहुत किन्तु बोर्ड के सदस्यों पर गुस्सा उतारने के लिए उसने सच्ची-सच्ची बात बता दी।

इतने में चपरासी ने आवाज दी। फकीरचन्द कौन हैं ?

फकीरचन्द अब क्या करे ? वह तो पैजामें कमीज में आया था। इण्टरव्यू के लिए थोड़े ही आया था। लक्ष्मीचन्द को ख्याल सा आ गया कि फकीरा उसकी हँसी उड़ायेगा और इसीलिए

झल्लाये हुए उसने फकीरे से कहा कि कपड़ों से क्या होता है । चला जा न अन्दर ।

चपरासी को जब मालूम हुआ कि यह पैजामें कमीज में फकीरचन्द हैं तो उसने न जाने कैसी नजर से उसकी ओर देखा।

फकीरे को आ गया जोश। झट से घुस ही गया वह इंटरव्यू होनेवाले कमरे में।

"आपका नाम ?"

"फकीरचन्द······ ।"

"आपने इण्टर पास किया है ?"

"जी हाँ······ ।"

अध्यक्ष ने ऊटकमंड के प्रश्न का बाण छोड़ा।

"ऊटकमंड में काफी अच्छा मौसम होता है । गर्मियों में काफी गर्मी पड़ती है और शीतकाल में सर्दी और बरसात में तो बरसात ही बरसात।" फकीरचन्द ने उत्तर दिया।

इंजीनियर ने वार खाली देख होनोलूलू के बारे में पूछ डाला।

तीस कच्चे और पाँच पक्के पुल बने। क्योंकि हमारी कक्षा की एक पिकनिक पार्टी वहाँ गई हुई थी इसलिए एक पुल तो बनता हम लोगों ने अपनी आँखों से देखा।" फकीरचन्द ने सफेद झूठ से बोर्ड के सदस्यों के काले मुँह सफेद कर दिये।

ऊँघता इंजीनियर सँभल कर बैठ गया । और अध्यक्ष ने संघनी निकालकर चुटकी भर नाक में भर ली । अब बारी सेनीटरी इंस्पैक्टर की थी।

मिस्टर फकीरचन्द, क्या आप जानते हैं कि करमकल्ले की सब्जी बनाने का आविष्कार किसने किया था ?

"तीसमारखाँ ने, जो कि एक महान् वैज्ञानिक हो चुका है। मैंने उसकी इस विषय पर एक पुस्तक भी पढ़ी है।" फकीरचन्द ने बड़ी ही सादगी से उत्तर दिया।

और आपको यकीन नहीं होगा अगर मैं आपसे कहूँ कि फकीरचन्द को वह नौकरी मिल गई।

अनछुआ प्यार

श्री रामलखन शुक्ल

भारती चौंक पड़ी। उसके सामने एकाएक नरेन्द्र आ गया था। नरेन्द्र जो किसी समय ताजे लाल गुलाब के समान सुर्ख प्रतीत होता था, जिसकी बड़ी-बड़ी आँखें अनायास ही देखने वाले को खींच लेती थीं। लेकिन वह पहले वाला नरेन्द्र नहीं था, शायद यह इसका भूत था। आँखें धँस गई थीं, उनसे मायूसी छलकती थी। चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। शरीर महज हड्डियों का ढाँचा रह गया था। इसीलिए तो भारती चौंक पड़ी। जब नरेन्द्र ने भारती की ओर देखा तो उसकी आँखें झुक गईं और वह तुरन्त वहाँ से सरक गया।

नरेन्द्र की यह दशा देख कर उसका हृदय रो उठा। उसका मन उसके प्रति करुणार्द्र हो उठा। केवल करुणा का ही उद्रेक हुआ, प्रेम या स्नेह का नहीं। दरअसल भारती उसे कभी प्यार करती भी नहीं थी। हाँ, उसके प्रति उसके मन में सदा दया

की भावना रहती थी। वह उसे बेचाराही समझती थी और उसकी सभी हरकतों पर मात्र तटस्थता का प्रदर्शन करती थी। जब-कभी झुंझलाहट भी आती थी तो उसे बरबस रोककर मन ही मन हँस देती थी। 'बेचारा अपनी आदत से मजबूर है। सामने वाले के मनोभाव को ताड़े बिना ही अपने कमजोर दिल की कमजोर वृत्तियों को प्रदर्शित कर देता है।' लेकिन आज उसकी यह हालत देख कर उससे रहा न गया। वह उससे महज इतना कहना चाहती थी कि जो तुम्हारी नहीं हो सकी, उसके लिए इस तरह तड़पना कायरता है और उस परिस्थिति में जबकि वह तुम्हें कतई प्यार नहीं करती थी। तुम्हारे लिए उचित है कि तुम किसी से विवाह कर लो और उसके बाद प्यार करना सीखो। लेकिन नरेन्द्र वहाँ से जा चुका था।

भारती के मन की आँखों के सामने अतीत के चित्र उभरने लगे। नरेन्द्र उसका पड़ोसी था। दोनों का बचपन करीब-करीब एक साथ बीता था। शायद दोनों की उम्र में सिर्फ दो साल का अन्तर था। नरेन्द्र बचपन में बहुत ही शरारती था। वह भारती को बहुत ज्यादा सताया करता था। जब वह रोने लगती थी तो वह अन्यमनस्क हो दूर खड़ा हो जाता था और अपलक नेत्रों से उसे रोते देखता था। कुछ देर बाद उसके पास जा आँसू पोंछता और फुसला-फुसला कर उसे शांत करता था, पर दूसरे दिन फिर वही हरकत कर बैठता था! भारती उससे डरने लगी थी, फिर भी उसके साथ खेला करती थी। दोनों बड़े हुए और धीरे-धीरे दोनों में प्रगाढ़ता भी बढ़ती गई, किंतु भारती उससे कुछ दूर ही रहती थी। उसके अचेतन मन में किसी न किसी रूप में उसका भय समाया हुआ था। जिस वर्ष वह एस-एस. सी. में थी, एक मजेदार बात हो गई। वह अकेले ही स्कूल जा रही थी।

थोड़ी देर हो गई थी। किसी ने उसे पीछे से पकड़ लिया। वह और कोई नहीं था, नरेन्द्र था। उसने हौले से उसकी वेणी में गुलाब का एक फूल खोंस दिया। वह आँखों से आग बरसाती चली गई। कुछ कह न सकी। उसने दूसरे दिन देखा स्कूल छूटने के वक्त नरेन्द्र स्कूल के पास मौजूद है और वह जैसे ही बाहर निकली, वह उसके साथ हो लिया। उसकी सहेलियों की मुस्क-राती आँखों ने उसके दिल को उत्तेजित कर दिया और सखियोंसे अलग होने पर उसने उसे आड़े हाथों लिया, पर सब कुछ फिजूल दूसरे दिन फिर उसी समय नरेन्द्र वहाँ मौजूद था। भारती का सारा अस्तित्व कनमना उठा और उसके मन में उसके प्रति भयंकर जुगुप्सा की भावना भर उठी। किसी प्रकार उसने अपने आप को संयत रखा और एकांत में जाकर उसे बहुत कुछ भला-बुरा कहा और धमकी भी दे दी कि अगर कल से फिर कभी दिखाई पड़े तो मुझसे बुरा कोई नहा होगा और मैं माँ से सब कुछ कह दूंगी। खैर उस दिन के बाद उसने फिर ऐसी हरकत नहीं की, पर किसी न किसी बहाने उससे मिलने उसके घर जाया ही करता था। वह उसे देख कर मुँह मोड़ लेती थी, कमरे से बाहर निकल जाती थी और बात-चीत तो करती ही नहीं थी। नरेन्द्र उसके पीछे साये के समान दौड़ता था और वह उससे दूर भागती थी। उसके उच्छृंखल व्यवहार ने भारती के मन में उसके प्रति मात्र वितृष्णा ही उत्पन्न नहीं की, बल्कि एक तरह की प्रतिहिंसा की भावना भी जागृत कर दी। वह अब उससे कतराना ही नहीं चाहती थी, बल्कि उसे अपमानित भी करना चाहती थी। एक दिन जबकि नरेन्द्र उसे एकांत में मिल गया तो उसने उससे अत्यंत स्पष्ट शब्दों में उसका अपमान-सा करते हुए कहा था—'नरेन्द्र ! तुम नाहक मेरे पीछे पड़े हो। मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती। हाँ,

मैं अपनी पूरी शक्ति से तुम्हें नफरत करती हूँ।' नरेन्द्र अपना-सा मुँह लेकर चला गया था और फिर कई दिन तक दिखाई नहीं पड़ा था।

नरेन्द्र कई दिनों तक अपनी शक्ति जुटाता रहा और अंत में भारती के नाम एक छोटा-सा पत्र लिखा और उसे स्वयं देने उसके घर की ओर चला। भारती घर पर नहीं थी। वह उसी को पत्र देना चाहता था और चाहता था कि वह उसके सामने ही वह पत्र पढ़े, जिससे वह उसकी समस्त प्रतिक्रियाओं को पूर्ण रूप से देख सके, पर भारती मिली ही नहीं। वह निराश हो वापस लौट गया और पत्र कहीं गिर पड़ा।

उस समय भारती का झुकाव राजकिशोर की ओर हो चुका था। राजकिशोर का व्यक्तित्व तो अधिक आकर्षक नहीं था, पर उसकी शातिर आँखों में जादू था और उसकी नुकीली नाक बहुत ही सेंसिटिव प्रतीत होती थी। उसके घुंघराले बालों में खास निरालापन था। इन सबसे परे उसमें ऐसी संजीदगी थी जो उसके व्यक्तित्व का मूल्य बढ़ा देती थी। भारती को उसकी गँभीरता बहुत ही पसंद आई और उससे भी बढ़कर पसन्द आई उसकी सहिष्णु वृत्ति। भारती में आवश्यकता से अधिक वाचालता थी। वह जब कुछ कहने लगती थी तो बिना रुके कहती ही जाती थी, भले ही सुनने वाले को पसन्द हो या न हो। राजकिशोर धैर्य और शांति के साथ उसकी बातें सुनता था और उसकी आँखों में उसके प्रति प्रशंसा-भाव तैरने लगते थे जिन पर वह फिदा हो जाती थी। उस दिन वह भारती से मिलने उसके घर जा रहा था। रास्ते में उसे नरेन्द्र का गिरा हुआ पत्र मिल गया। वह रास्ते में ही उसे पढ़ लेता, लेकिन दिनेश उसका मित्र उसके साथ था। इस कारण पढ़ न सका।

भारती नहीं मिली और दोनों उल्टे पाँव लौट आए। सीढ़ियाँ उतरते ही वह दिखाई पड़ गई। उसे साथ ले वे एक रेस्तराँ में चले गए और वहाँ पर राजकिशोर ने नरेन्द्र का लिखा पत्र भारती को दे दिया। भारती बिना किसी संकोच के उनके सामने ही पत्र पढ़ने लगी।

'प्रिय भारती,

यह मेरा पहला और आखिरी खत है। मैं तुम्हें अपने मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित कर चुका हूँ। यदि तुम मुझे अपना लोगी तो मेरी जिंदगी की हर साँस बेशकीमत हो जाएगी और यदि ठुकराए ही रहोगी, तो भी मैं तुम्हें ही प्यार करूँगा। मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारे प्रति मेरा प्यार एकांगी है, तुम दरअसल मुझे प्यार नहीं करती। पर क्या करूँ ? विवश हूँ। तुम तो मेरे रोम-रोम में समाई हो। जो कुछ भी हो मैं अपना अंतिम निर्णय कर चुका हूँ। विवाह करूँगा तुम्हारे साथ, नहीं तो ताजिन्दगी कुँवारा रहूँगा।

तुम्हारा अभागा
नरेन्द्र।'

भारती ने पढ़ने के बाद उसे मसल कर अपनी मुट्ठी में ले लिया और उसकी बहुत सारी चिन्दियाँ बना कर उन्हें इधर-उधर बिखेर दिया। राजकिशोर के पूछने पर भी कोई जवाब नहीं दिया। दोनों के बीच कोई खास बात नहीं हो सकी। एक तो तीसरा शख्स भी वहाँ मौजूद था; दूसरे, भारती की मुख-मुद्रा गंभीर हो गई थी। थोड़ी ही देर में वे वहाँ से चले गए।

उस दिन भारती को नींद नहीं आई। नरेन्द्र के पत्र का एक एक शब्द उसकी आँखों के सामने तैर जाता था। वह समझ नहीं पाती थी कि वह क्या करे। मन के कोने-कोने से उसने पूछा, पर कोई उत्तर नहीं मिला। मन के तार-तार को झनझनाया, पर

कहीं से भी नरेन्द्र के नाम की ध्वनि नहीं आई। उसने सोचा था कि शायद उसके मन के किसी कोने में नरेन्द्र की मूर्ति हो, पर उसका कहीं पर भी अस्तित्व नहीं था। यदि किसी बात का अस्तित्व था तो वह थी उसके प्रति घृणा की भावना। रात के अंधकार में भी उसका मन उसके प्रति घृणा से भर उठा। "वह विवाह करे या न करे अपनी बला से। मेरा क्या बनता-बिगड़ता है ? जिसको मैं चाहती ही नहीं, उसकी चिंता क्यों करूँ ? ऐसा सोच उसने दूसरी करवट ले ली, फिर भी नींद नहीं आई।

नरेन्द्र पत्र खो जाने पर निरुत्साह हो गया। उसने पुनः पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं समझी। एक दिन भारती और नरेन्द्र के परिवार के सभी लोग पिकनिक पर गए थे। नरेन्द्र ने सोचा था कि वह भारती के सामने अपने मनोभाव प्रकट कर देगा, पर भारती ने उसे ऐसा मौका ही नहीं दिया। वह किसी न किसी के साथ ही रही। नरेन्द्र एक जगह बैठ कर किसी का हाथ देखने लगा। उत्सुकतावश कई लोग एकत्र हो गए। भारती भी पहुँच गई। सब के हाथ देखे जाने पर उसने भी अपना हाथ बढ़ा दिया। हाथ थामने से पहले नरेन्द्र कह उठा—"समझ कर हाथ थमाना। जीवन भर का प्रश्न है !" भारती ने धीरे-धीरे अपना हाथ खींच लिया और विद्रूप मुस्कान के साथ मुंह मोड़ लिया। एक चुभता हुआ उत्तर वह देना चाहती थी। लेकिन अपने आपको रोक लिया और वहाँ से उठकर चली गई। नरेन्द्र हतप्रभ हो गया, उसका चेहरा उतर गया और उसकी आँखों में निराशा के बादल उमड़ने लगे।

भारती के मन में जिस वेग से नरेन्द्र के प्रति वितृष्णा बढ़ने लगी उसी वेग से उसके मन में राजकिशोर के प्रति आकर्षण बढ़ता गया। उसके प्रेम ने अत्यंत उद्दाम रूप धारण कर लिया। वह

अहर्निश राजकिशोर की भव्य, सौम्य मूर्ति अपने सामने देखना चाहती थी। वह उसके सान्निध्य में रह तन-मन से आप्यायित होना चाहती थी और राजकिशोर उससे सदा एक निश्चित दूरी रखना चाहता था। उसके साथ चलता तो अवश्य था, पर अंगों का स्पर्श किए बिना। उसकी बातों पर मुस्कुराता तो अवश्य था, पर गँभीरता के साथ । वह उसके इन व्यवहारों को संयम के निकर्ष पर कसा हुआ समझती थी और मन ही मन उसकी प्रशंसा करती थी तथा उसका मन और भी तीव्र गति से उसकी ओर प्रभावित हो उठता था। उसको क्या पता था कि उस चरम गांभीर्य और अगाध संयम के अन्तराल में ज्वालामुखी सुलग रहा था, जिसका किसी क्षण विस्फोट हो सकता था।

राजकिशोर और भारती दोनों एक दिन जुहू तट पर गए। भारती अपने प्रेम को समेट नहीं पा रही थी। जब दोनों बैठ गए तो भारती अनायास ही राजकिशोर के जंघे पर सिर रख अपलक नेत्रों से उसकी आँखों में निहारने लगी। कुछ देर तक निहारती ही रही। उन आँखों में उसे तरलता के स्थान पर सूनापन ही नजर आया। वह समझ न सकी। आँखों को आँखों से दूर कर वह उसके होठों पर अपनी उँगलियाँ घुमाने लगी। स्पष्ट रूप में यह चुम्बन का मुक्त निमंत्रण था, पर राजकिशोर ने उसे धीरे से बैठा दिया और बहुत धीरे से कहा, 'कोई देख लेगा।' भारती संयम की उस पराकाष्ठा को समझ न पाई, लेकिन कुछ भी कह न सकी। राजकिशोर के प्रति उसके भावों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया, बल्कि वे और भी ज्यादा निखरते गए।

दोनों का विवाह तय हुआ। भारती की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। वह यही जानती थी कि राजकिशोर की भी मन

की मुराद पूरी हुई है। इसलिए उसका हर्ष भी अण्वर्ण्य ही होगा, पर विवाह तय हो जाने के बाद से ही वह चारों ओर से उदासी और मायूसी से घिर गया। उसकी मुरादों पर तुषारपात हो गया था। वह जिसे अपनाना चाहता था, उससे उसकी दूरी बढ़ने लगी थी और एक अनचाहा बोझ उस पर लादा जा रहा था। दरअसल भारती से उसकी कभी भी मिलने की इच्छा नहीं होती थी, उसके घर वालों ने उसे मिलने के लिए मजबूर कर दिया था, जिससे वह अन्तर्जातीय विवाह न कर सके और जब भारती ने उसके साथ विवाह की सहमति व्यक्त कर दी तो उसकी इच्छा की परवाह किए बिना उसका विवाह निश्चित कर दिया गया।

विवाह के दिन राजकिशोर में एक दम नया परिवर्तन आ गया था। जो व्यक्ति अपनी गँभीरता और अपने सौम्य स्वभाव के लिए प्रशंसित था, वही उच्छृंखलता और निर्लज्जता पर उतर आया। उसके कहकहे सुनकर भारती तो भयभीत हो गई। उसने उसे इस तरह उन्मुक्त हास करते नहीं देखा था। औरों को उसके उस व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था। लेकिन दर-असल उसके कहकहे उसके अन्तर्मन के क्रन्दन के झीने अवरण थे।.........

सुहाग-रात। भारती ने समझा था आज की रात मुरादों का समुन्दर रत्नों का उपहार फैला देगा; नींद की खुमारी प्रेम-पयोधि में डूब जाएगी; चन्द्र की मुस्कराती किरणें बिखर-बिखर प्रेमोन्माद में घुल जाएँगी; धरती और आकाश एक-दूसरे के निभृत आलिंगन में जकड़ जाएँगे; पर ऐसा कुछ भी न हुआ। वह रात भर बैठी रही, उसके प्रियतम उससे दूर ही रहे। उसकी आँखों से खून जम गया, उसके आँसू सूख गए और वह अपने स्थान पर बैठी ही रही। शय्या के फूल मुरझा गए, किन्तु अन-

छुए ही रहे, धरती का चाँद फीका पड़ गया, पर मुस्कान की स्निग्ध रश्मि अनछुई ही रह गई।

'वहाँ बैठी-बैठी क्या कर रही हो ? चलो, घर का काम करो। रानी बनकर नहीं आई हो !' राजकिशोर की कड़कती आवाज सुनाई पड़ी। भारती मन मसोस कर काम में लग गई। राजकिशोर सिर्फ तीन दिन तक घर रहा, लेकिन उससे कतराता ही रहा। वह कुछ भी समझ न पाई कि उसके राजकिशोर में यह सब कैसा परिवर्तन है।

वहाँ से जाने के बाद उसने कोई पत्र भी न लिखा। अपने प्रति ऐसी रुखाई, ऐसी कठोरता भारती के लिए असह्य हो उठी। एक माह हो चुका था। घर का सारा माहौल खाए दौड़ता था। महज सास का सरस, मृदु व्यवहार उसे थोड़ी-सी शांति पहुँचाता था। उसने राजकिशोर के पास जाने का निश्चय कर लिया और उस आशय का तार भी भेज दिया। राजकिशोर लाचार था। उसे स्टेशन तक जाना पड़ा, पर रास्ते भर उसे भला-बुरा सुनाता रहा, लेकिन वह सब कुछ पी गई। उसने एक शब्द भी न कहा। पर राजकिशोर उसके प्रति उदासीन ही बना रहा। खाना खा लेता था और किसी न किसी बहाने बाहर चला जाता था। भारती ने बड़ी सावधानी से यह लक्षित किया कि वह प्रतिदिन एक बजे घर से जाता था और सात बजे लौटता था। कालेज सबेरे का था। ग्यारह बजे ही वहाँ से आ जाता था। दूसरा कोई काम था नहीं। छह घंटे तक हर रोज बाहर रहता था। उसका मन जिज्ञासु हो उठा।

दूसरे दिन जब राजकिशोर घर से बाहर निकला तो उसने उसका पीछा किया। छाया की भाँति वह उसके पीछे-पीछे रही, नहीं तो रास्ते में भटक जाने का अंदेशा था। राजकिशोर एक

कमरे में घुसा। नारी कंठ ने उसका स्वागत किया। भारती खिड़की के पास खड़ी हो गई। "राजू ! मैं तुमसे कितनी बार कह चुकी कि तुम मेरा पिंड छोड़ दो, मुझे और ज्यादा मत सताओ। लेकिन तुम हो कि मानते ही नहीं । तुमने तो मेरी जिन्दगी बरबाद ही कर दी और मेरे साथ एक और की जिन्दगी बरबाद करने पर तुले हुए हो । मैंने तुमसे रो-रो कर कहा था कि मेरे साथ विवाह कर लो । हम लोगों की जिन्दगी हसीन हो जाएगी, पर तुम ठहरे भीरु, कायर । जातीयता के साँप की लपलपाती जीभ ने तुम्हें डरा दिया और मुझे मेरी हालत पर छोड़ तुमने विवाह कर लिया। तुमने मुझे धोखा दिया, तुमने मुझे कहीं का न छोड़ा । भला बताओ, अब मैं क्या करूँगी ? कैसे जिऊँगी ? राजू, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, करूँगी ! यदि ऐसा न होता तो मैं तुम्हें अपनी इन आँखों से न देखती, कभी भी न देखती । तुम जानते हो नारी का असफल प्रेम उसे क्या बना देता है ? नागिन ! नागिन !! मैं भी तुम्हें डस लेती, लेकिन नहीं, मैं तुम्हें दिल से प्यार करती हूँ। इसलिए तुम्हारा कोई नुकसान नहीं कर सकती। अब मैंने भी विवाह करने का निश्चय कर लिया है। जब तुम किसी दूसरी से विवाह कर जी सकते हो तो मैं भी जी सकती हूँ। मैं भी विवाह करूँगी और बहुत जल्दी। अब तुम मेरे पास अकेले मत आया करो । यदि आना चाहो ही तो अपनी पत्नी के साथ आया करो । उसका नाम क्या है ?" उसने अंत में धीरे से पूछा।

'भारती !' रुआँसे स्वर में राजकिशोर ने कहा और उसने बड़ी आजिजी के साथ आगे कहा—"चन्द्रा ! तुमने मुझे गलत समझा है। मैं तुम्हें तहेदिल से प्यार करता हूँ । तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।"

"राजू ! अब मैं तुम्हारे जाल में नहीं फँस सकती । मैंने समझा था मेरे जीवन में आकर तुमने मेरे जीवन के कोने-कोने को अलोकित कर दिया। मुझे तुमसे कितनी उम्मीद थी पर तुमने मुझे कहीं का न छोड़ा । अभी तक मैं अपने आप को सँभालती रही। तुम आते रहे, तुमसे मिलती रही, बातें करती रही, पर अब मुमकिन नहीं है। मेरा दिल कह रहा है कि अब मैं तुमसे दूर हो जाऊँ। दरअसल तुम प्रेम-पथ के पथिक नहीं हो सकते। प्रेम-पथ बहुत ही विकट होता है। पद-पद पर काँटों का जाल बिछा रहता है। तुम ऐसे पद पर नहीं चल सके, तभी तो समाज की एक साधारण-सी घुड़की पर तुम सिट्टी-पिट्टी भूल गए, तुम्हारे कदम डगमगाने लगे और समाज ने तुम्हारे दिल और दिमाग पर अपने अधिकार की मुहर लगा दी । अब तुम उससे किसी तरह बाहर नहीं निकल सकते।"

"मैंने विवाह कर लिया है, पर मैं बन्धन से दूर रहूँगा । उसके साथ मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। यदि वह मेरी स्वतंत्रता में बाधा बनेगी तो उसे मुझसे हमेशा के लिए अलग होना पड़ेगा।" राजकिशोर ने जोश के साथ कहा।

"राजू ! तुम सचमुच कायर हो। मैं एक मास से लगातार देख रही हूँ कि तुम शादी करने के बावजूद मेरे साथ पहले जैसा सम्बन्ध बनाए रखना चाहते हो। लेकिन तुम्हें क्या यह मालूम है कि मेरी मानसिक दशा क्या है? मैं तुम्हें पहले दिन ही, जबकि तुम शादी करके आए थे, अपने घर में घुसने न देती, पर ऐसा मैं न कर सकी; क्योंकि मैं अपनी पूरी शक्ति से तु प्यार करती थी। इसीलिए लगातार एक मास तक मैं तुम्हें सहती रही, लेकिन अब मुझसे सहा नहीं जाता । तुम्हें अब मैं पहले जैसा प्यार नहीं दे सकती, तुम पर तरस खा सकती हूँ । तुम्हें

करुणा भरी आँखों से देख भर सकती हूँ। शायद सहानुभूति भी नहीं दिखा सकती। सचमुच तुम प्यार के काबिल भी नहीं हो। शुरू में मैंने तुम्हें समझने में भूल की थी। अब तुम जा सकते हो और हाँ, यह खयाल रखना कि अब मेरे यहाँ अकेले मत आना।" उसकी ओर देखे बिना ही इतना कह चन्द्रा दूसरे कमरे में चली गई। शायद उसकी आँखें छलछला आई थीं।

राजकिशोर के निकलने से पहले ही भारती वहाँ से जा चुकी थी और उससे पहले घर पहुँच गई। उसी दिन से उसका मन राजकिशोर के प्रति करुणा और सहानुभूति से भर उठा और शायद उसके प्यार का भी स्रोत सूख गया। उसने सोचा राजकिशोर तरस खाने योग्य है, करुणा का पात्र है, उसे सहानुभूति की जरूरत है, पर वह प्रेम का पात्र नहीं बन सकता। शायद वह ऐसी धातु से बना है, प्रेम के प्रति जिसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होती।

"मेरे लिए राजकिशोर और नरेन्द्र दोनों ही करुणा के पात्र हैं। इनमें से कोई मेरा प्रेम-पात्र नहीं बन सकता। तो मेरे अनछुए प्यार का क्या होगा? उसे मुझे जीते जी ही दफनाना होगा।" ऐसा सोचने के साथ उसके मुख से एक ठंडी आह निकल गई जिसे उसे छोड़ कर दूसरा उसे कोई नहीं समझ सकता था।

आज भी नरेन्द्र की मायूसी देखकर उसके मन में केवल करुणा का ही उद्रेक हुआ।

पागल

श्री मदनगोपाल

वार्डर ! क्यों इसे मार रहे हो, तुम नहीं जानते मैंने न मारने के लिए सख्त हिदायत दे रखी है। अर्दली रूम में पेश हो।

नहीं सरकार, मेरी इसमें कोई गल्ती नहीं, इसने मुझे पत्थर मार दिया था।

यह……नहीं था, यह तो बहुत सीधा-सादा था। आखिर बात क्या हुई ?

कुछ नहीं हुजूर, यह पुलिया पर बैठा हुआ कुछ छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े लेकर किसी निशाने पर मार रहा था। पत्थर को प्यार करता था और फिर उसी निशाने पर मारता था। इसके बाद ही तत्काल हँस देता था।

एं, क्या यह हँसता था, मैंने तो कभी भी इसे हँसते हुए नहीं देखा था। फिर क्या हुआ बताओ, डाक्टर लाल ने उत्सुकता से पूछा।

मैंने कहा—"क्या मस्ती करते हो" और इसकी हँसी एक-दम गुस्से में बदल गई और मुझे मारने को दौड़ पड़ा। बड़ी गजब की ताकत है इसमें। मुश्किल से अपनी जान बचा पाया हूँ। फिर मुझे गुस्सा आ गया और फिर मैंने इसे मारा है। डाक्टर लाल गम्भीर हो गये और कुछ देर बाद बोले जरूर इसको कोई चोट लगी हुई है जिसकी स्मृति तुम्हारी बातों में इसको आ गई है और फिर वह दुख भुलाने को हो गया। तुम जाओ, आज मैं इसे ही······करूँगा।

डाक्टर लाल बड़े प्यार से पागल के पास गये। उसे बुलाया और अपने पास चिपटा लिया और उसके सूखे बालों में हाथ फेरने लगे। पागल अपने पलंग पर पड़ा हुआ था। डाक्टर ने पागल से पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है?"

नाम! ह······ह······ह··· डाक्टर मेरा नाम कभी था लेकिन अब कुछ भी नहीं।

डाक्टर लाल सोचने लगे कि इसे आराम की आवश्यकता है सो उन्होंने गुलुकोश वाला दूध मँगाया और उस पागल को पिलाने लगे। डाक्टर उसे······ही करते रहे, उससे कुछ भी न बोले। उन्होंने तेल मँगाया और अपने सामने ही उसके बालों में डाला तथा मालिश की। फिर इसके बाद कुछ गोलियों के साथ उसे अपने हाथों से पिलाया और उसके बाद उसके माथे पर हाथ फेरने लगे।

पागल की आँखों में आँसू आ गये। वह अचानक उठ बैठा और डाक्टर से पूछने लगा—"क्या तुम मुझे प्यार करते हो डाक्टर?"

"हाँ, मैं तुम्हें अपने लड़के की तरह प्यार करता हूँ।" डाक्टर ने जवाब दिया।

पागल भौंचक्का हो उनके चेहरे की तरफ टकटकी लगाये देखने लगा। फिर कुछ देर बाद वह बोला—"मेरा बाप बचपन में ही मर गया था, मुझे आज तक किसी ने भी बाप की तरह प्यार नहीं किया डाक्टर, किसी ने भी नहीं। मैं तरसता रहा बाप के प्यार के लिए। मुझे किसी ने भी प्यार नहीं किया—किसी ने भी नहीं। और फिर उसके बाद उसकी हिचकी बँध गई और वह फूट-फूट कर रोने लगा।

डाक्टर ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"बेटा, रो मत। सुन मेरा कोई भी बेटा नहीं है, आज से तू मेरा बेटा है। बोल बनेगा मेरा बेटा। आज से तुम मेरे बँगले पर ही रहोगे।

पागल डाक्टर की तरफ देख-देखकर रोता ही रहा, डाक्टर से देखा न गया और उसकी आँखों में आँसू छलक आये। वहाँ पर खड़े हुए सभी लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि इतने बड़े डाक्टर की आँखों में आँसू ! ताज्जुब है। उसके बाद डाक्टर ने पागल को अपने बँगले पर रखा और उसे पहनने के लिए नये-नये कपड़े दिये। अपने हाथों से उसे खाना खिलाते, स्नान कराते, सर में मालिश करते। उसकी देखभाल के लिए वार्डर को सख्त हिदायत दे दी कि इसे किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। लेकिन वह पागल, जब से डाक्टर के घर पर आया था, हमेशा लान पर कुर्सी पर चुपचाप बैठा ही रहता। न किसी से कुछ कहता और न कुछ बोलता। डाक्टर तो इतने व्यस्त रहते थे कि चाहते हुए भी उसके पास रहने के लिए समय न निकाल पाते। इन सब का नतीजा यह हुआ कि पागल को डाक्टर से स्नेह-सा होने लगा जो कि उसके हाव-भाव से प्रकट होता था, हालाँकि बोलता वह अब भी नहीं था। तथा उसका स्वास्थ्य भी डाक्टर की देख-रख के कारण काफी हद तक सुधरने लगा।

एक दिन डाक्टर शाम को कुछ जल्दी ही बँगले पर आ गये। क्योंकि उन्हें बाहर किसी पार्टी में जाना था । डाक्टर जैसे ही बँगले पर पहुँचे कि वे क्या देखते हैं कि उनका पागल तितलियों के पीछे भाग रहा है। तितलियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़कर चली जाती और वह उन्हें पकड़ने के लिए उनके पीछे-पीछे हँसता हुआ भाग रहा है। कुछ देर तक तो वह यूँ ही वह खेल देखता रहा लेकिन उसके बाद जैसे ही उसको आँखें पागल से चार हुई तो उसने पूछा—"क्यों बेटे, यह क्या मस्ती कर रहे हो?" डाक्टर की बात सुनकर पागल एकदम चुप हो गया, उसके गाल एकदम लाल हो गये फिर उसके पास ही पड़ा हुआ एक पत्थर उठाया और डाक्टर के सिर पर दे मारा। पत्थर निशाने पर बैठा। डाक्टर के सिर से खून की धार बह निकली और वहीं पर गिर पड़ा। नौकरों ने डाक्टर को गिरते हुए देख लिया था, सो वह तत्काल ही भागे तथा उसे उठाया और अस्पनाल ले गये। अस्पताल जाते हुए डाक्टर ने अपने नौकरों से कहा—"उसे मारना मत, आज मैंने फिर उसका दिल दुखाया है।" उसके बाद डाक्टर को कुछ होश नहीं रहा। खून काफी निकल गया था। एक बूढ़ा शरीर, ऊपर से इतने खून का निकल जाना। इन सब कारणों से डाक्टर काफी कमजोर हो गये। क्योंकि वे काफी प्रसिद्ध व्यक्ति थे, इसलिए उन्हें देखने आने वालों का ताँता-सा लग गया। जो भी आया उसने पागल को धिक्कारा। वह चुपचाप खड़ा रहता था, किसी से कुछ भी नहीं कहता था। लेकिन उसके चेहरे से यूँ लगता था मानो इस बात का उसे गम है कि उसने भूल से ऐसा कोई बुरा कार्य किया हो। एक दिन उसने किसी तरह अस्पताल में डाक्टर वाला कमरा देख लिया। जब शाम को सभी नौकर चाकर चले गये

तो वह चुपके से डाक्टर के कमरे में घुसा। उसने दरवाजे से देखा कि डाक्टर का चेहरा एकदम पीला पड़ गया है। उसके सर पर पट्टी बँधी हुई है तथा वह आँखें बंद किये बिस्तर पर लेटा हुआ है। पागल उसके पैरों के पास बैठकर रोने लगा। रोने की आवाज सुनकर डाक्टर एकदम चौंक पड़ा। वह उठ बैठा। उसने देखा कि वह पागल उसके पैरों के पास बैठा हुआ रो रहा है। डाक्टर ने खींच कर उसे अपने पास बैठाते हुए कहा—पगले, तुम रो रहे हो, तुम तो मेरे बेटे हो, इस प्रकार रोना कोई अच्छी बात है ? मैं तो तुम्हें देखने के लिए इतने दिनों से तरस रहा था। डाक्टर की यह बात सुनकर वह पागल और भी जोर-जोर से रोने लगा। रोने की आवाज सुनकर बाहर खड़े हुए नौकर भी अन्दर आ गये। डाक्टर ने इशारे से उन्हें बाहर जाने के लिए कहा। फिर डाक्टर ने अपने हाथों से उसके आँसू पोंछे तथा मुँह धोने के लिए उसे पानी दिया। कुछ देर बाद वह पागल कुछ संयत हुआ और कहने लगा—

"मैं बहुत पापी हूँ, मैंने आपको पत्थर मारा है। मुझे माफ कर दीजिए वरना मैं तड़फ-तड़फ कर मर जाऊँगा।" पागल के मुँह से यह शब्द सुनकर डाक्टर एकदम खुशी से उछल पड़े, उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। वह सोचने लगे कि अब इसे ठीक करने में कोई देर नहीं लगेगी। उन्हें विश्वास हो चला कि वे अब उसे अवश्य ही ठीक कर लेंगे। मानो सफलता अब उनके कदम चूम रही है। "नहीं बेटा, तुमने पत्थर मुझे थोड़े मारा था, वह तो तुमने भूल से फेंका जो कि मुझे लग गया इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। भूल तो बड़ों-बड़ों से हो जाया करती है। इसमें दुखी होने की कोई बात नहीं बेटे।"

नहीं ! मैंने जान-बूझकर मारा था, आपने मेरी चोट दुखा दी थी। यह बात सिर्फ वही कहती थी और कोई नहीं—कोई नहीं—कोई नहीं। और वह पागल फिर एक गंभीर हो गया।

इसके तीन दिनों के पश्चात् डाक्टर अस्पताल से घर आ गये। पागल अभी तक उन्हीं के बँगले में रह रहा था। डाक्टर ने अब पहले से ज्यादा दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। वह हमेशा यही कोशिश करते थे कि यह हमेशा कुछ बोलता रहे ताकि जिस बात की वजह से यह इस स्थिति में पहुँचा है उसके असर को कम किया जा सके और इसमें उन्हें सफलता मिल भी रही थी। अब वह देखते थे कि भोजन के समय पागल अपनी प्रतिक्रिया करता रहता है जो कि पहले नहीं थी। तथा भोजन में अब वह दिलचस्पी भी लेने लगा है। डाक्टर ने उसे खुश रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया यहाँ तक कि उसके लिये एक नया ट्रांजिस्टर ले आये ताकि उसका किसी तरह दिल बहला रहे। हालाँकि डाक्टर को गीत का भी शौक नहीं था लेकिन उसके लिए वह सुनने का बहाना कर लिया करते थे।

एक दिन शाम को डाक्टर ने देखा कि रेडियो पर एक गीत आ रहा था—"जमाने का दस्तूर है यह पुराना, हँसा कर रुलाना, रुलाकर हँसाना।" इस गीत को सुनकर पागल एकदम रोने लगा, डाक्टर ने उसे रोका नहीं और रोने दिया। थोड़ी देर बाद वह गीत जब खत्म हो गया तो वह पागल भी चुप हो गया। अब वह कुछ ज्यादा गंभीर मालूम हो रहा था। उसके मुँह से कुछ अस्फुट शब्द बाहर निकलने लगे। वह बुदबुदा रहा था—"वह भी बिल्कुल ऐसे ही गाती थी, मुझे हर रोज वह गीत सुनाया करती थी।" मुझे यह लाइन बहुत पसन्द थी—

"मोहब्बत का अंजाम रोशन था हम पर,
बहुत हमने रोका मगर दिल न माना।"

हा……हा……ही……ही……ही……ही……करके वह चिल्लाने लगा। डाक्टर असमंजस में पड़ गया, कुछ समझ न सका। उसने उसे रोकना चाहा पर उसका प्रलाप जारी ही रहा। हा……हा……हा……हा…… गीत, गजल, गाना लारने की तरह ही आवाज ही……ही…… ही…… ही……। डाक्टर कुछ परेशान हो गया। काफी मुश्किल के बाद उस पागल को सुलाने में वह सफल हो सका सारी रात डाक्टर ने आँखों में ही निकाल दी। पागल कभी कभी उसी तरह की बात कह कह के चौंक उठता था। डाक्टर बड़े ध्यान से यह सब बातें नोट कर रहे थे।

"तू तो पगली, मेरे ख्वाब जैसे ही निकली" ऊहूँ तेरे साथ जिन्दगी बिताऊँ? ओ हो ओ हो!' पागल बुदबुदाया और फिर शांत होकर सो गया।

प्रातःकाल ही डाक्टर ने देखा कि पागल को बहुत जोर का बुखार आ गया है। उसे कुछ भी होश नहीं है। वह अब भी बुरी तरह से अलाप रहा था लेकिन अब उसका अलापना कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तब डाक्टर ने एक दूसरे डाक्टर को बुलाया। आज डाक्टर से बुखार का इलाज नहीं हो पा रहा था। उस पागल के प्रलाप से डाक्टर को अपनी जिन्दगी के ख्वाब याद आने लगे। वह सोचने लगे—"उसे भी तो यही बुखार था, यहीं मेरी गोद में उसका सर था, मैं कितना खुश था उस समय जब वह दोनों थे।"

"हेलो डाक्टर।" दूसरे डाक्टर ने आवाज दी, डाक्टर के सोच में व्याधा पड़ गई। उसने आकर मरीज को देखा, भाला

तथा दवा लिख दी तथा यह कहकर कि चिंता की कोई बात नहीं, आप तो स्वयं एक बड़े डाक्टर है, दवा ऐहितियाद से देते रहियेगा।

"डाक्टर आखिर यह मरीज है कौन ?" उसने पूछा।

"मेरा बेटा।" डाक्टर ने जवाब दिया। तब तक पागल भी कुछ होश में आ चुका था। उसने भी डाक्टर के यह शब्द सुने और उसकी आँखों में आँसू आ गए।

डाक्टर फिर से सोचने लगा कि—उस समय भी तो डाक्टरों ने यही कहा था कि चिंता की कोई बात नहीं है–और वह मेरी गोद में लेटे-लेटे न जाने कहाँ चला गया ? उसकी माँ यह सह नहीं सकी—कुछ दिनों के पश्चात् वह भी न जाने कहाँ चली गई मुझे अकेला छोड़कर—बिल्कुल अकेला, जिसका दिल टूट गया है। फिर डाक्टर का ध्यान पागल की तरफ गया, वह हाथ-पैर पीट रहा था। डाक्टर ने उसे दवा दी तथा इसके पश्चात् अपने हाथों से उसे दूध पिलाया। धीरे-धीरे प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगा।

"बाबूजी, आप मुझे छोड़ तो नहीं देंगे ?" पागल ने पूछा।

"नहीं बेटे, भला मैं तुम्हें किस तरह छोड़ सकता हूँ ? तुम तो मेरे बेटे हो। कोई अपने बेटे को भी छोड़ सकता है ?" डाक्टर ने जवाब दिया। काफी देर तक वह उसके पलंग के पास ही बैठे रहे, जब उसे नींद आ गई तब वह उठे और अस्पताल चले गए। लेकिन उनका दिल वहाँ भी न लगा। वह सोचने लगे कि उसे तकलीफ दिल की ही है। गीतों से उसे राहत मिलती है। क्यों न एक रेकार्ड प्लेयर मंगा लिया जाये ताकि किसी न किसी तरह उसका दिल बहलता रहेगा और हो सकता है कि इसीसे ही वह अपने ग़म को या दिल पर लगी चोट को भुला सके।

तब वे उठे तथा एक दुकान से एक रेकार्ड प्लेयर तथा कुछ नये-पुराने रेकार्ड लेकर घर आए। उन्होंने वहां रेकार्ड बजाये, कुछ अंग्रेजी धुने भी थीं। पागल काफी खुश नजर आया इन सबको देखकर। सारा दिन खुशी-खुशी में निकल गया। मगर रात को एक तेज आवाज ने डाक्टर को एकदम चौंका दिया—वह उठे और पागल के कमरे की तरफ भागे, उन्होंने देखा कि वह चिल्ला रहा था—"न जाओ, न जाओ, देखो मैं तबाह हो जाऊँगा।" डाक्टर ने देखा कि उसका बुखार भी काफी तेज हो गया था। किसी तरह डाक्टर ने पागल को शांत कराया और उसे वापस लिटा दिया। नौकर से एक शाल मंगवाकर वहीं उस पागलके पास बैठ गए और धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। डाक्टर के उस हाथ से पागल को काफी राहत महसूस हो रही थी। अचानक उसने डाक्टर का हाथ पकड़ लिया और बोला—"बाबूजी, आपने कभी किसी से प्यार किया है ?" डाक्टर ने जवाब देने के लिए मुँह खोला ही था कि पागल फिर बोल उठा, "बाबूजी आप मेरे पास ही यूं बैठे रहिए, बोलिए बैठेंगे न ?" डाक्टर ने कहा—

"हाँ हाँ बेटे, मैं यहीं तुम्हारे पास ही बैठा हूँ, तुम किसी बात की चिंता मत करो।" डाक्टर ने वायदा किया कि मैं सुबह होने तक यहीं बैठा रहूँगा। अब सुबह होने में कोई ज्यादा देर भी नहीं थी। उसके बाद पागल सो गया। डाक्टर उठे, हाथ मुँह धोया और अस्पताल जाने की तैयारी करने लगे। इतने में वह पागल भी उठा उसने भी आज अपने हाथ से पहली बार हाथ मुँह धोया। फिर दोनों ने साथ साथ-चाय भी पी। इतना ही नहीं उसने काफी देर तक डाक्टर से बातचीत भी की। डाक्टर को विश्वास ही नहीं हो रहा था। वे सोच रहे थे कि

कहीं वे सपना तो नहीं देख रहे हैं लेकिन वह सपना नहीं हकीकत थी। उनके प्यार ने, उनके विश्वास ने तथा उनकी मेहनत, धैर्य आदि ने मिलकर आशातीत सफलता प्राप्त की थी। पागल की बातों से डाक्टर को यह मालूम हो गया कि वह काफी पढ़ा लिखा आदमी है। पर जब बात चली तो पागल ने इसे समय काटने की तरकीब बताया। उसने डाक्टर को बहुत थोड़े से शब्दों में अच्छी तरह से समझा दिया। डाक्टर ने रेकार्ड प्लेयर बजाना शुरू कर दिया। गीतों से पागल बहुत खुश होता था। आज डाक्टर को लग रहा था कि उसका मरीज ठीक हो गया है। वही पुराना गीत बजने लगा, मरीज भी रोने लगा। लगातार उस गीत को डाक्टर बजाते रहे, मरीज का रोना भी जारी ही रहा। आज डाक्टर उसे रोकना भी नहीं चाहता था। उनका विश्वास था कि रोने से उसका दिल काफी हल्का हो जायेगा और आज की स्थिति को देखते हुए मुमकिन है यह अपने दिल की बात मुझसे कह दे। और आखिर हुआ भी वही जो डाक्टर ने सोचा। "मैं उसे बेहद प्यार करता था डाक्टर। वह भी मुझे खूब चाहती थी। मैं उसे अपनी बनाना चाहता था, अनेकों ख्वाब देखा करता था। मैं कुछ उससे बड़ा था। हम दोनों की शादी में कुछ व्यवधान पड़े हुए थे। वह मुझे अक्सर यही कहा करती थी—मस्ती मत करो। आखिर उसने एक वही मांगा जिसे देकर पहले मैं तबाह हो चुका था। उसने मुझसे वचन लिया और जोश-जोश में मैंने हाँ कह दी।" इसके बाद उसने एक दम चिल्लाना शुरू कर दिया, डाक्टर दर्द हो रहा है, मैं मर जाऊँगा डाक्टर, मैं मर जाऊँगा। अपनी छाती को दबाते हुए वह वहीं पर लेट गया। डाक्टर ने हार्ट स्पेशिलिस्ट को बुलवाया। लेकिन पागल का चेहरा पीला पड़ता जा रहा

था। दर्द से उसकी आँखें बन्द हुई जा रही थीं। वह फिर बोला —"उसने मुझसे भाई का प्यार माँगा और मैंने हाँ कह दी। उसके बाद मुझे कुछ भी मालूम नहीं कि मेरा क्या हुआ, मैं इस समय कहाँ हूँ। और फिर उसका क्या हुआ ? कुछ भी पता नहीं डाक्टर! कुछ भी नहीं।"

"आह......आह......" दर्द से कराहते हुए वह फिर बोला "डाक्टर बहुत देर कर दी। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, अब मैं जीना भी तो नहीं चाहता।" और वह पागल हिचकियां लेता हुआ दम तोड़ रहा था..........

? ? ?

डॉ० प्रभास शर्मा 'मेहता'

शैशव की कल्पना से अभिभूत, मातृ-भूमि से सैकड़ों मील दूर-जीवन के चौगान में दौड़ लगाता पथिक आज पुनः आ गिरा अपनी कल्पना की वनस्थली में। उसके सजीव स्वजन-परिजन तो जगती के कोलाहल में शायद इतने तल्लीन हो चुके थे कि उसके स्वागत को न पहुँच पाये, पर अपने बचपन के साथी की अवज्ञा ऊँची-ऊँची शृंगमालाएँ और कल-कल करते झरने न कर सके-एक-बारगी द्रवीभूत हो उसके चरण चूमने चल पड़े।

फिर भी पथिक की सहज ममता और तीव्र आकर्षण के पात्र यह निर्जीव पहाड़ एवं नदी-ताल न बन पाये—वह तो तब भी अपने राग-द्वेषी बन्धु-बान्धवों की स्थिति पर विचार करता, एक अज्ञात स्नेह-बन्धन में पगा-सा अपने बीवी-बच्चों का ध्यान किये, आगे बढ़ता चला जा रहा था।

उसी समय दूर ढलाव में नभ-मण्डल की ओर उठते धुएँ से आशंकित उसका हृदय धक-धक करने लगा। कही गाँव में

आग तो नहीं लग गई है—क्योंकि आज-कल आग, प्रलय और तूफान ही तो क्षण-क्षण में उठते, बढ़ते और फैलते रहते हैं—इन्हीं का तो बोलबाला है। ज्यों-ज्यों वह धूम्र-पुंज के निकट पहुँचता गया, उसकी यह भ्रांति निर्मूल होती चली गई परन्तु दो-तीन पास-पास जलती चिताओं को देख वह और अधिक भयभीत हो उठा। वहीं पास ही में धधकती अनेक जीवन-ज्वालाओं को असंख्य नेत्रों से छलछलाते करुणाअश्रुओं के प्रवाह में कुछ शांति पाते देख, अपने शोषण के भव्य मन्दिर की चिमनियों से उठते धुएँ को, जो असंख्य जीवन-ज्वालाओं की तेज भट्टियों से उठ रहा था, सजीव दृश्य रूप में सम्मुख आते देख उसका मन बार-बार सिहर पड़ा।

यहाँ पर निर्जीव धधकती चिताओं को अश्रु-धारा से शान्त होते देख उसे दूसरी ओर सजीव मानस की दग्ध चिताओं को अपने ही जैसे प्राणियों द्वारा दी जाने वाली आहुतियों से अधिक तीव्रगामी होने का स्मरण हो आया। मृत्यु से स्नेह और जीवन के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की ज्वाला मानव के हृदय में सुलगते रहने के इस विचित्र संयोग से उसका अर्ध-शिक्षित मन जन-जीवन के भविष्य की दुरूह कल्पना से और अधिक आशंकित हो उठा। अपने शोषण के मंदिर का ख्याल आते ही कुछ ही समय पूर्व घटित सारी घटनाएँ चित्र-पट की भाँति उसकी आँखों के सामने घूमने लगी।

रात की पारी में जब वह रूई के गट्ठर सर पर उठाये ऊपर मशीन की ओर जा रहा था— सहसा तूफान का वेग बढ़ने लगा और तभी मानो आकाश फूट पड़ा हो। पास ही समुद्र से कुछ दूर मजदूरों की झोंपड़ियों के बह जाने का अंदेशा बढ़ने लगा। किन्तु उत्पादन-कार्य की त्वरा में कोई

अन्तर नहीं आ सका। मशीनें बराबर चलती रहीं। ऑफिस की छत पर चढ़ उसकी सशंक निगाहों ने अपनी झोंपड़ी ढूंढ निकालने की चेष्टा की, तो उसे लगा कि उसमें जलता हुआ मन्द-मन्द चिराग तूफानी हवा के थपेड़ों में आत्म-समर्पण करना ही चाहता है—झोंपड़े की काठ-बाँस की काया भी समुद्र की भयंकर गर्जन से काँपती प्रलयंकारी, बरसात में डूबी-डूबी बहने की तैयारी में है।

तभी बिना किसी से कुछ पूछे वह अपनी झोंपड़ी पर पहुँचा और इन पाँच वर्षों में पेट पर पट्टी बाँध घरवालों के लिये जो कुछ पाँच-पच्चीस रुपये बचाये थे, उन्हें सीने से लगाये वह पुनः चुपचाप आकर अपने आराध्य की अर्चना में जुट गया।

आँधी और पानी का प्रकोप बढ़ता ही गया। झोंपड़ियाँ सभी अब तो प्रायः जल-मग्न हो चली थीं। जल-प्रवाह बढ़ता-बढ़ता कारखाने की चहारदीवारी से आ टकराया। ऐसी मूसलधार प्रलयंकारी बरसात और महासागरी तूफान में भी उत्पादन-कार्य निर्विघ्न रूप से जारी रहा। किन्तु, जब जल-प्रवाह चहारदीवारी के भीतर प्रवेश कर गया तो बेचारा भोंपू कैसे न बचता! जीवन रक्षा-प्रदात्री भोंपू की प्रतिध्वनि को आशीर्वाद देते मजदूर वहाँ से भाग खड़े हुए........उसी समय जल रहे शवों में से किसी के ब्रह्माण्ड फटने की हृदय-विदारक ध्वनि से वह चौंक पड़ा और अपने आपको शैशव के स्वप्निल क्रीडांगन में पा आश्चर्य में डूबा-सा आगे बढ़ता चला गया।

अस्त-व्यस्त अन्यमनस्क-सा पथिक ज्यों-ज्यों अपने गाँव के बाहर स्थित एकमात्र मीठे पानी के सुविशाल कुएँ पर पहुँचा, जिसके चारों ओर फैली सघन वृक्षों की छाया आने-जाने वालों को सहज रूप से आकर्षित किये बिना कैसे रहती।

विश्रांत पथिक कूप की मुंडेर पर सघन छाया तले दो घूँट ठण्डा जल पीकर लुढ़क गया। तभी पास ही कुछ दूरी पर जमे हुए कुछ भले आदमियों की काना-फूँसी सुनाई दी। वे सभी साफ-सुथरे वस्त्र धारण किये समाज-सेवी से लोग राष्ट्र-सेवा, देश-प्रेम एवं जनतंत्र की बातों में तल्लीन थे। पथिक का बेबस व्याकुल मन सहज ही उस ओर आकर्षित हुए बिना न रह सका। किन्तु चाहते हुए भी उन लोगों के समूह में जा मिलना उसके लिए संभव न था। वह सामान्य शिष्टाचार की सीमाएँ कैसे लाँघ सकता था! किसी मण्डल में होने वाली विश्वस्त मन्त्रणा में वह ठूँठ की भाँति कैसे जा खड़ा हो— यही साँप-छछून्दर-सी गति उसकी हो रही थी। तो क्या वह मानव-जाति का सदस्य न था! जन-मंगल की बात-चीत में भाग लेने में भी उसे विचार करने की आवश्यकता थी!

उस प्रकार की बातें सुनते-सुनते उसके कान पक गये थे। किन्तु यहाँ पर एक विशेष बात की अस्पष्ट ध्वनि उसके कानों में पड़ी। उसने तो उसके रोंगटे खड़े कर दिये—उसके तन-बदन में बिजली चमक उठी। क्या ऐसा भी संभव हो सकता है? आखिर यह सभी प्रगतिशीलता के हामी समाज-सेवी चाहते क्या हैं? क्या जन-जीवन के बलिदान एवं समाज-सेवियों की अन्तरात्मा की आहुति द्वारा ही मानव-कल्याण का यज्ञ पूर्ण होगा? अन्न के एक-एक दाने के अभाव में मानव तिल-तिल कर दम छोड़ दे—कोई बात नहीं, उसी में उसका कल्याण है! वाह री प्रगतिशीलता! वाह रे जन-मंगल! बलिहारी है तेरी!

और अधिक वहाँ पर पड़ा रह सकना उसके लिए असह्य हो उठा। नशे में डूबा-सा लम्बे-लम्बे डग भरता उसी मनःस्थिति

में वह अपने घर के द्वार पर पहुँचा और ताबड़-तोब दरवाजा खटखटाने लगा। परन्तु भीतर से कोई आवाज न आती देख कर उसकी चेतना लौटने लगी और पुनः वह आश्चर्य, आशंका और असमंजस के भँवर में चक्कर खाने लगा। उसी वक्त कुन्दा खुलने की आवाज से वह पुनः चौंक उठा और अपने तार-तार हो रहे तर-बतर आँचल में अपनी कृश काया और सूखे कपोलों के आँसू छिपाये एक नवयुवती उसके सामने आ खड़ी हुई।

अन्दर जाने के साथ ही वह धड़ाम से जा गिरा और एक ही श्वास में उद्विग्न-सा बोल पड़ा—"बात क्या है आखिर? और सब कहाँ है? रामू का क्या हाल है? पाँच ही वर्षों में घर का क्या हाल हो गया है?"

सिर नीचा किये अपने आँचल को कुछ ऊपर खिसकाती हुई सिसकती अबला आकाश की ओर संकेत करती कहने लगी—"आपने तो जाने के बाद कोई खोज-खबर ही नहीं ली और यहाँ दो-एक वर्ष से क्रमशः सभी अकाल के गर्भ में समाते चले जा रहे हैं। भूख-प्यास से दम तोड़ रहे बच्चे, बूढ़े और जवान—संक्रामक बीमारियों में सड़ती, तड़पती और मिटती जिन्दगियाँ...........पिछले सप्ताह में ही रामू भी.........बचे हुए बड़े-बूढ़े राहत कार्य की खोज में गये हैं और मैं........." इतना कहने के साथ ही उसकी आँखों से टप-टप गिरते आँसू प्यासी धरती पीती चली गई।

यह सब सुनने के बाद भोला को अपनी पत्नी के आँसू पोंछने तक का ध्यान न रहा—वह सन्न-सा कांपने लगा–उसके होंठ फड़फड़ाने लगे। घृणा और प्रति-हिंसा से ओतप्रोत भोला की आंतड़ियाँ कड़-कड़ाहट करती वातावरण में एक भयानकता का संचार करती ललकार उठीं। उसका चेहरा तमतमा उठा।

परन्तु क्या कर सकता था वह ? लड़ता तो किससे—अपने आपसे या अपनी आत्मा से ?

पास में बचे कुछ सिक्के उमा को संभला कर वह भी चल पड़ा वहाँ से। रास्ते में अपने बचपन के साथी लालू का मकान पा कर वह सहसा पुकार उठा, "लालू"। वहाँ की स्थिति भी अपने घर के समान ही पा, अपने मन की व्याकुलता पर काबू पाने का प्रयत्न करता, वह भी लालू तथा अपने घर के शेष बचे लोगों से मिलने खेमपुर के तालाब की ओर चल दिया। जहाँ पर चल रहे राहत-कार्य से अपनी पेट-भराई करने लोग-बाग वहाँ पर गये हुए थे।

खेमपुर में लालू से मिलकर उसे कुछ सान्त्वना मिली लेकिन अपने मां-बाप के देहावसान के समाचारों से उसकी ग्लानि और क्षोभ और अधिक बढ़ गया—उसकी आत्मा और अधिक तिलमिला उठी। आखिर विवश हो उसने भी वहीं मजदूरी शुरू कर दी। किन्तु आज आठ-आठ दिन हो जाने पर भी चुकारे का नाम नहीं। मजदूर को तो हर-हमेशा मजदूरी चाहिए—भूखे पेट आखिर कब तक गाड़ी आगे चलती ? भोला और लालू जैसे गये थे वैसे ही खाली हाथ और भूखे पेट वापस अपने गांव लौट आये। किन्तु अपने-अपने घरों पर ताले पड़े देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ! बाद में यह मालूम होने पर तो वे और अधिक आत्मग्लानि से आहत हुए कि उनकी स्त्रियाँ भूख-प्यास से व्याकुल कहीं चल दी हैं।

भूख-प्यास से व्यथित आत्मग्लानि का भार ढोये दोनों अधिक से अधिक दिनों तक जीवित रह सकने की फिक्र करने लगे। न पास में कुछ बचा था, न गाँव में ही अन्न का कोई दाना शेष था। ऐसे में सहसा भोला का ध्यान अपने टूटे-फूटे

झोंपड़े की ओर गया, किन्तु क्या उस पर केवल उसी का अधिकार............ नहीं, नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता।

तभी उस ओर से गुजरते हुए कुछ प्रतिष्ठित सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं को देख भोला व लालू के मन में अपनी दयनीय स्थिति का रोना उनके सामने रोने का विचार उठ खड़ा हुआ। किन्तु, तत्काल ही गांव के बाहर मीठे पानी के कुएँ पर घटित प्रसंग की स्मृति भोला के मन में जागृत हो उठी और वह उन्हीं सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं की अमानवीय जुगुप्सापूर्ण दुरभिसंधि से काँप उठा। वह मन ही मन बड़बड़ा उठा—नहीं,नहीं........इनसे मानव-मंगल की कोई आशा नहीं की जा सकती। यह समाज-सेवी-राजनीतिक खरगोस हमारी मजार पर ही तो अपने अरमानों की दुनियां बसाने की कल्पना साकार किया चाहते हैं। और वह लालू को आगे धकेलता बढ़ चला।

ज्यों-ज्यों वे संभ्रांत लोग भोला और लालू के समीप पहुँचते गये, भोला तो उनके चेहरे पर थूक-थूक कर अपनी नफ-रत और रोष की आग को कम करने लगा, किन्तु इन सबकी काली-करतूतों से अनजान लालू अपने को न रोक सका और दीन स्वर में पुकार ही उठा–सेठजी, बाबूजी, नेताजी, हम बहुत दिनों से भूखे हैं—अधमरे हो रहे हैं। मौन–मन ही मन मुस्कराते, कुछ संकेत करते वे आगे बढ़ते चले गये—मानो कह रहें हो—"तो, मर क्यों नहीं जाते अब..................तभी तो हमारा सपना...........।"

पास के जंगलों में वृक्ष की छाल, जड़ और पत्ते चबाते कुछ दिन और भोला और लालू मौत से लड़ते रहे। तभी एक दिन, जबकि प्रचण्ड आंधी चल रही थी किसी ने आकर कहा-"तुम्हारी

स्त्रियाँ किसी के साथ.........।" क्षीरण, निष्प्राण, जर्जर भोला उठने में असमर्थ होने पर भी अपनी उत्तेजना को वश में न रख सका—तेजी से उठने के साथ ही वह धड़ाम से धरती पर आ गिरा। और—इस बार जो वह गिर, फिर कभी न उठ सका।

दो-चार दिन भोला के शव पर आँसुओं का अभिषेक करता असहाय लालू भी एक दिन उसके शव पर झूल पड़ा।

कुछ दिनों बाद जब आस-पास काफी दुर्गन्ध फैलने लगी और झुंड के झुंड चील-कौए, कुत्ते-सियार आदि शव के चारों ओर मंडराते आँख, नाक, कान नोचते, आंतों से खेलते, आनन्दोत्सव मनाते रहे तो कुछ सरकारी अधिकारी, पुलिस-कर्मचारी और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं का जुलूस वहां पर पहुँचा। काफी बारीक तहकीकात, जांच-पड़ताल तथा बहस के बाद जो नतीजा निकला, वह था—विश-पान, आत्म-हत्या! पास ही खड़े एक समूह विशेष ने इसका प्रतिवाद भी किया, किन्तु उससे क्या होता! आखिर शव-परीक्षा का नतीजा अधिकृत रूप से घोषित कर दिया गया—विश-पान से मृत्यु और जला दिया गया उन निर्जीव भूखे शवों को जंगल की सुलगती चिताओं में!

अनचाहा

शेखर जैन

इस बार मनोहर ने भी समझा था, कि अधिक संतान दुख का, गरीबी का कारण है। मगर अब बात उसके हाथ से निक ग चुकी थी। उसने डाक्टरों की मदद से गर्भपात के अनेक प्रयत्न किये थे, मगर सब व्यर्थ। अब शारदा भी तटस्थ भाव से साथ देने के लिए साथ दे रही थी। डॉक्टरों ने भी कानून के अन्तर्गत रह कर ही साथ दिया। कानून तो महज बहाना था .... डॉक्टरों को मनोहर न तो ३-४ सौ रुपये दे सकता था और न वे कानून तोड़ सकते थे। इसी बहाने-बाजी के कारण डाक्टरों ने उन साधनों का उपयोग ही नहीं किया जिनसे शारदा का गर्भपात हो जाता। मनोहर रह गया।

एक दिन भाग्य की दुहाई के साथ मनोहर की पत्नी शारदा ने एक बालक को और जन्म दिया और संख्या पाँच पर पहुँचा दी।

रीति-रिवाजों के अनुसार थालियाँ बजीं, औरतों ने गीत गाये··· मगर मनोहर को लगा जैसे घर में एक पिल्ला और बढ़ गया। उसकी मेहनत-मजदूरी में दो घंटे और बढ़ गये। उसका वेतन ठंड के दिनों की तरह और सिकुड़ गया और जिम्मेदारियाँ रात की तरह लम्बी हो गईं। उसने छत की ओर देखा—जाल से निकलने के लिए तड़पती मकड़ी को और भी फँसते हुए। वह भगवान को भी गालियों दान देने से न चूका।

वैसे भी मनोहर खूब मेहनत करता था। जैसे-तैसे खींचतान कर महीने की २५ तारीख देख पाता है—पाँच दिन तो मांग-मूंग कर ही चलाना पड़ता है। अच्छे भोजन के अभाव में शारदा के आँचल सूख गये थे—बच्चा उन्हें चचोर-चचोर कर सिर्फ चिल्ला कर अपनी भूख व्यक्त करके रह जाता। उसकी भूख शांत होने लगी मनोहर के दूध के हिस्से से।

मनोहर बच्चों से प्यार नहीं कर पाता—आखिर समय भी चाहिए। वह अब अवोरटाइम काम करने लगा है। उसे जैसे धीरे-धीरे बच्चों से नफरत होने लगी और विशेष तो इस नए पिल्ले श्यामू से। न जाने क्यों श्यामू को देख कर उसके हृदय में वात्सल्य के स्थान पर घृणा ही उपजती। शारदा शायद यह जान गई थी। अतः भरसक प्रयत्न करती कि श्यामू मनोहर की निगाह में ही न पड़े। बच्चे भी जैसे पिता की सूरत से अबोध ज्ञान प्राप्त कर डर सा महसूस करने लगे थे। जो कभी पप्पा पप्पा कह कर चीजों की याचना करते थे, वे अब मां से बापू के क्रोध, कंजूसी की शिकायत करते। शारदा उन्हें टाल देती—मगर मन रो पड़ता। मातृत्व आँसुओं में घुल जाता।

"आप इतनी अधिक मेहनत मत कीजिए.........कुछ हो गया तो ?" एक दिन शारदा ने उदास होकर मनोहर से कहा।

"मर ही तो जाऊँगा। इस नर्क से तो कुछ हो जाये...... मर जाऊँ तो अच्छा।" मनोहर ने चिढ़कर उत्तर दिया।

"बापू मेरे लिए फ्राक लादो न !" उसी समय बड़ी लड़की सुषमा ने कहा।

"और मुझे जूते !" कुंदन ने भी मांग पेश की।

"बापू मेले लिए थेंदल" छोटी मुन्नी तुतला कर बोली।

मनोहर स्थिरप्रज्ञ-सा सब कुछ सुन कर मन ही मन घुटन का अनुभव कर रहा था।

सुषमा के बारम्बार आग्रह करने पर वह उस पर हाथ उठा बैठा था। शारदा ने मनोहर को रोक लिया। सभी बच्चे डर कर भाग गये। सुषमा सिसकती हुई माँ का मुँह ताकने लगी।

"चल हट पहले इस पिल्ले—कुत्ते को दूध पिला।" श्यामू को रोते देख कर वह झल्ला कर बोला।

बेचारी शारदा श्यामू को लेकर आँखें पोंछती हुई चली गई। मनोहर घर में लगे एक उछलते सागर के चित्र में खो गया।

मनोहर की जिन्दगी मशीन बन गई। बीड़ी-पान भी व्यसन कहकर उसने त्याग दिया। उसके जीवन का एक मात्र कर्त्तव्य था कमाना और बच्चों का पेट भरना। वात्सल्य, प्रेम जैसे स्वप्न ही बन गये थे। वह तो अब पतझड़ के वृक्ष की तरह ठूंठ सा बन गया था।

श्यामू पाँच वर्ष का हो गया था। मनोहर उसे देखता और एक ही बात उसके दिमाग में बिजली की तरह कौंध जाती कि

श्यामू जबरदस्ती की पैदाईश है, उसकी पराजय का चिन्ह है। और वह घृणा से भर जाता।

मनोहर ने श्यामू को कभी पिता की नजरों से न देखा और न उसके भविष्य के प्रति चिंतित ही था।

बालक श्यामू भी न जाने क्यों पिता को देखते ही घर में भाग जाता। अन्य भाई बहिनों की तरह उससे बोलता भी नहीं था। एक दिन उसने घर में लगे कृष्ण के चित्र को देखा था जिसमें कृष्ण यशोदा की गोदी में है और नंद बाबा चुंबन कर रहे हैं। चित्र देख उसने माँ से पूछा—

"माँ, यह लड़का किसकी गोद में है?"

"अपनी माँ की।" शारदा ने कहा।

"और यह चूमा कौन ले रहा हैं।" श्यामू ने जिज्ञासा से पूछा।

"यह उसके पिता नंद बाबा हैं।"

"बापू तो ऐसा नहीं करते। वे तो मुझे ही मारते हैं—कुंदन को नहीं।"

श्यामू ने कुन्दन को कभी मार खाते नहीं देखा था। उसी आधार पर तर्क किया।

शारदा ने बहाना बनाकर उसे टाल दिया।

श्यामू स्कूल में पढ़ने जाने लगा। बुद्धि तीक्ष्ण थी। उसे सबक भी जल्दी याद हो जाते। शिक्षक उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते।

श्यामू यहाँ देखता कि बहुत से बच्चे किसी आदमी का हाथ पकड़ कर आते हैं जिसे वे बापू, पिताजी, पापा, डेडी न जाने क्या-क्या कहते हैं और वह बापू कहलाने वाला उन बच्चों को

प्यार करता, चॉकलेट, बिस्कुट देता और चला जाता । वह अपने सहपाठियों से उनके पिताजी की बातें पूछता ।

कोई कहता—"मेरे पिताजी मुझे बाजार घुमाने ले जाते हैं ।"

कोई कहता—"मेरे पिताजी मुझे रोज बिस्कुट लाते हैं ।"

कोई कहता—"मेरे पिताजी मुझे साइकल पर घुमाते हैं ।"

श्यामू को ये सब बातें नई लगतीं । वह सोचता—"मेरे भी पिताजी हैं—न घुमाते हैं, न बिस्कुट लाते हैं, न स्कूल पहुँचाने आते हैं । हाँ, कभी-कभी कुन्दन को ले जाते हैं । मेरा तो नाम भी मेरी माँ लिखाने आई थी, यह भी उसे याद आया ।

वह इन्हीं विचारों में खोया रहता, उसे लगता जैसे उसका बाप किसी अन्य किस्म का प्राणी हो । वह इन्हीं विचारों में उम्र से अधिक बुजुर्ग बन गया । ज्यों-ज्यों वह अन्य साथियों के पिता के व्यवहारों को देखता और अपने पिता के व्यवहार को देखता तो उसे अपने पिता के प्रति एक अज्ञात रोष आने लगता । जो क्रमशः बढ़ता ही जाता ।

"पिताजी मुझे भी घुमाने ले चलो, मुझे अच्छे कपड़े ले दो । तुम तो कुन्दन को ही घुमाते हो ।" एक दिन उसने पिता से कहा ।

"साला अभी से ईर्ष्या करता है ।" मनोहर ने उसका हाथ झिड़क दिया ।

श्यामू के मन में पिता के प्रति रोष घृणा में परिवर्तित होने लगा ।

समय का प्रवाह बहता गया । श्यामू अब १४ वर्ष का था । वह पूर्ववत् स्कूल भी जाता । मगर अब पढ़ने में उतना होशियार नहीं था । उसमें पिता के प्रति घृणा बढ़ती ही गई । वह मन ही मन पिता को कोसने लगा । वह इन्हीं विचारों में खोया रहता

कि पढ़ाई में पिछड़ता गया और जाने क्यों खुश रहने के लिए वह शरारतों की ओर झुकने लगा। वार्षिक परीक्षा के परिणाम में भी उसे उमी वर्ग में रह जाना पड़ा।

मनोहर को जैसे मौका मिला……श्यामू के फैल हो जाने पर उसने उसकी खूब पिटाई। श्यामू और भी उद्दंड होता गया।

श्यामू पिता को देखता और उसे शरारत सूझती। पिटना और पीटना तो जैसे श्यामू और मनोहर के नित्य के कार्य बन गये।

वह कभी शीशे तोड़ता, कभी पिता को देख फर्श पर थूकता, कभी पिता के कपड़े छिपा देता। उसका जैसे धर्म था पिता को परेशान करना और पिता का कर्त्तव्य था लड़के को पीटना। शारदा तो बिचारी तटस्थ थी।

मनोहर घर से पैसे चुराता, मुहल्ले के लड़कों से लड़ता और माँ-बहिनों के साथ सम्बंध स्थापित करता। परिणाम…… लोग मनोहर से उसकी शिकायत करते……श्यामू पिटता…… मगर सब बेकार।

शारदा श्यामू को हर तरह से समझाती और श्यामू श्मसान वैराग्य की तरह सुनकर भूल जाता।

श्यामू पिता की मार का उत्तर अब औंधे-सीधे उत्तरों से देने लगा। मनोहर के लिए घर नर्क बन गया और श्यामू के लिए धर्मशाला।

एक दिन मनोहर तंग आकर श्यामू को मारने दौड़ा कि श्यामू ने भी प्रतिकार के लिए पत्थर उठाया तभी शारदा चिल्ला उठी—

" निगोड़े अच्छा होता तू गर्भ से गिर जाता—निगोड़ी दवाएँ भी तुझसे हार गईं थीं। मर क्यों नहीं जाता।" शारदा कहते-कहते रो पड़ी।

" माघड़....साले......." मनोहर गालियाँ बके जा रहा था।

श्यामू एकाएक जड़ हो गया। वह बाहर चला गया था... और घंटों उसके कानों में यही गूँजता रहा......दवा, गर्भ गिर जाना......। वह इन्हीं शब्दों पर विचार करता रहा। ज्यों-ज्यों गुत्थी सुलझाता त्यों-त्यों और उलझ जाता।

कुछ दिनों बाद वह इतना ही जान पाया कि वह पिता की अनिच्छा से पैदा हुआ है। वे तो गर्भ में ही उसे खतम करवा डालना चाहते थे। मगर भाग्य......प्रबल था।

श्यामू की उद्दंडता न जाने कहाँ गायब हो गई। इस शांति ने उसकी नफरत में ही वृद्धि ही की। उसे पिता के नाम से ही चिढ़ हो गई। घर उसे श्मशान-सा लगता और घर के लोग दुश्मन। वह घंटों सोचता वह तो मर-मर कर जिया था। उसे थोड़ा सा स्नेह था भी तो सिर्फ शारदा से क्योंकि उसने उसे पाला था। एक दिन यह स्नेह भी उसके इस तर्क के सामने खतम हो गया—

"मुझे पाला......क्या बड़ी बात हुई—वह तो मैं पैदा हो गया इसलिए पालना जरूरी था इनका बस चलता तो नदी में......।" इस विचार से उसे कँपकँपी-सी दौड़ गई।

एक दिन तंग आकर मनोहर श्यामू को शहर के बोर्डिंग-हाउस में—सच तो वह अनाथ आश्रम ही था—में भरती करा आया।

मनोहर ने सोचा शरारत दूर हुई।

श्यामू ने सोचा हत्यारों से दूर हुआ।

\+ + +

श्यामू को गये ७ वर्ष हो गये। इधर मरते जीते मनोहर और शारदा ने जिन्दगी की गाड़ी को घसीटते-घसीटते चलाया। शेष चार संतानों में जिनमें तीन लड़कियाँ थीं—जिन्हें अर्थाभाव के कारण पढ़ा-लिखा न सका था उन्हें अधिक उम्र के दोजू वरों से ब्याह कर विवाह की क्रियायें पूरी कर चुका था। कुन्दन भी पढ़-लिख न सका था। कुन्दन थोड़ा बहुत स्नेह पाकर उल्टे बिगड़ गया था। दिन भर का खेलना, गालियाँ बकना, पिटना-पिटाना उसका काम था। उसे बूढ़े बाप का कोई ख्याल नहीं था। मनोहर की बूढ़ी रोगिष्ट आवाज कुन्दन की उद्दण्डता के सामने दबकर रह जाती।

जीवन की दोपहरी में गरीबी, परेशानी से तपने वाले मनोहर की जीवन संध्या भी धूमिल ही थी। शरीर ने तो जैसे काम करने से दगा ही दे दिया और कुन्दन के हाल उसकी कमर तोड़ रहे थे।

जिन्दगी से जूझने वाला जिन्दगी का गुलाम था। क्षय ने उससे अपनी दोस्ती कर ली थी।

शारदा जीवित लाश सी बोझिल सिर्फ रोने के लिए जीती थी।

\+ + +

"श्यामू तुम्हारा पत्र आया है।" श्यामू के मित्र अरुण ने लिफाफा देते हुए कहा।

"मेरा पत्र ? किसने लिखा !" कार्य में व्यस्त रहते हुए ही उसने पूछा। पत्र लेने की कोई उत्सुकता नहीं बताई।

श्यामू अब २२ वर्ष का युवक था। यहाँ बोर्डिंग में रहकर छात्र-वृत्तियों के सहारे उसने बी. ए. कर लिया था। एम. ए. कर रहा था। उसका मुख्य विषय था मनोविज्ञान। वह लगभग भूल गया था कि उसके कोई माँ-बाप, भाई-बहिन भी हैं। उसे मात्र कभी-कभी ये शब्द दर्द की तरह याद आ जाते—"निगोड़ी दवायें भी तुमसे हार गईं।"

बोर्डिंग में आकर उसने अपने पांव पर खड़े होने का दृढ़ निश्चय किया।

"प्रेषक में मनोहरलाल लिखा है।" अरुण ने लिफाफा देखते हुए कहा।

"क्या ?" श्यामू एकदम चौंका और एकाएक पत्र हाथ में ले लिया। श्यामू ने पत्र आदि से अंत तक पढ़ा। और बड़बड़ाने लगा।

"हूँ ! प्यारे पुत्र। संबोधन किया है—प्यारे पुत्र ! तभी यहाँ ढकेल गये अनाथ-सा जीवन बिताने········मैं सनाथ होकर भी अनाथ हो गया। फिर मैं प्यारा कैसे ? मुझे तो गर्भ में ही मार डालने वाले थे।

कुन्दन की शरारतों का वर्णन किया है। अब क्यों रोते हैं ? रहें कुन्दन को लेकर। मैं क्या···? मैं तो त्माज्य हूँ। मुझे क्या सुख मिला सिवाय नफरत और घृणा के ?"

श्यामू को अपना बचपन, पिता की मार, माँ के शब्द 'निगोड़ी दवायें भी तुझसे हार गई थीं'—याद आ गये। उसका मन घृणा से भर गया। वह जैसे अतीत में खो गया।

"किसका पत्र है?" पूछा अरुण ने।

"बाप का।" श्यामू ने हीन संबोधन का प्रयोग किया और पत्र अरुण के हाथ में थमा दिया।

श्यामू के पास मनोहर के और भी पत्र आये और श्यामू पूर्ववत उन्हें सिर्फ कचरे की टोकरी में ही डालता रहा। बीच-बीच में अरुण उसे समझाता, घर जाने की सलाह देता मगर सब व्यर्थ।

इस बार उसे शारदा का खत मिला जिसमें मनोहर की बीमारी का दुखद वर्णन था। श्यामू की जड़ता में कोई परिवर्तन नहीं था। इस बार अरुण ने बड़ी कोशिश से समझाया। अन्य मित्रों ने भी कर्त्तव्य की बातें बताईं।

श्यामू अपने बैंक बैलेंस के पाँच सौ रुपये जो उसने ट्यूशन द्वारा पैदा कर बचाये थे—लेकर घर आया।

उसने देखा घर वही है। माँ-बाप वही हैं। मगर रंगत और भी फीकी है। उसने जाकर न माँ के पाँव छुए न पिता के। उसने मात्र एक ही कार्य किया कि पिता की दवा-दारू में अपने रुपयों का खर्च। उसके रुपये उसके पिता की जान न बचा पाये।

मनोहर की मृत्यु पर सबने आँसू बहाये मगर श्यामू पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसे मनोहर की मृत्यु अन्य सभी मरने वालों की तरह ही लगी।

शारदा बाँध तोड़ कर रोना चाहती थी मगर बीमारी ने तो उसके आँसू ही सुखा दिये थे।

परिवार के सभी लोग रो रहे थे और मनोहर बोर्डिंग हाउस लौटने के लिए सामान बाँध रहा था।

"बेटा ! कुछ दिन और रुक जाओ" शारदा ने रोते-रोते कहा।

"क्या जरूरत है।" श्यामू ने रुक्षता से उत्तर दिया।

" अभी १२ दिन नहीं हुए। फिर पिंडदान भी देना है।" शारदा ने लोक रीति की बातें कहीं ।

"माँ ! कुन्दन है। फिर मेरा दिया हुआ पिंडदान उन्हें नहीं लगेगा। कहीं मेरे पिंडदान से वे स्वर्ग में भी दुखी न हो जायें।" कुन्दन ने व्यंग्य किया।

"ऐसा मत कहो बेटा।" शारदा सिसक उठी।

"यही सत्य है। यही यथार्थ है। तुम्हें सुनना होगा। मैं तो उनकी इच्छा के विरुद्ध अवांछित पुत्र था । मुझे उनसे जीवन भर क्या मिला······घृणा, मार······कहीं पिंडदान उन्हें स्वर्ग में बेचैन न बना दे······

"चुप रहो श्यामू ! भगवान के लिए चुप रहो। क्या तुम्हारा खून सफेद हो गया है। क्या वे तुम्हारे पिता नहीं थे ?" शारदा ने श्यामू को टोक कर पूछा।

"मेरा खून सफेद हो गया है ? वाह ! माँ ! सात वर्ष पहले के अपने जीवन को देखो। फिर कहना खून किसका सफेद है। मेरा या पिता जी का। और वे पिता थे इसलिए कि उन्हें बनना पड़ा था । अन्यथा मुझे मार डालने में उन्होंने······" श्यामू एकाएक रोष में आ गया।

"चुप रहो।" शारदा चिढ़कर चिल्ला उठी।

"क्या सही बात नहीं सुनी जाती।" श्यामू चलने को उद्यत हुआ।

शारदा शून्य हो गई। उसे लगा उसका सही सुहाग तो अब उजड़ा है। पति के साथ उसका सब चला गया। कुन्दन और श्यामू के व्यवहारों ने उसे जड़ बना दिया।

"ऐसे घुट-घुट कर भूखों मरने से अच्छा तो आज ही मर जाऊँ तो अच्छा है।" और शारदा बिलखने लगी।

"भूखों नहीं मरोगी। तुम्हें साठ रुपये माहवार आ जाया करेंगे।"

"मुझे रुपये नहीं चाहिए। आज आत्मा से कहती हूँ कि तू उसी दिन मर जाता तो……"

"अच्छा था यही न ?" श्यामू ने जैसे बात पूरी की।

"मुझे पैसे मत भेजना। तेरे पैसों का खाने से अच्छा मर जाना है।" शारदा घृणा मिश्रित क्रोध से बोली।

"मैं एक बार रुपये अवश्य भेजूंगा। यह मेरा धर्म है कि उस नारी का पालन-पोषण करूँ जिसने मुझे अनिच्छा से भी जन्म दिया।"

कहते-कहते श्यामू घर से बाहर निकल गया।

अब शारदा की आँखों में आँसू न थे। क्रोध की चिनगारियाँ निकल रहीं थीं जो जाते हुए श्यामू पर बरस रही थीं।

धरती घूम रही थी……श्यामू जा रहा था और शारदा अपने को न सम्हाल सकने के कारण पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

मछलियाँ......ई......मछलियाँ

घनश्याम अग्रवाल

"आई"..........

आ.......ई.....ई.....ई.....

अहा.....आ.....ई.......

धत् तेरे की और मछली छूट कर भाग गई तह में। विरोधाभास करीबन एक घंटे से नदी किनारे बैठा है। नदी में मछलियाँ पकड़ना मना है लेकिन विरोधाभास को मछलियाँ पकड़ने का शौक इतना है कि वह दूर......दूर बहुत दूर जंगल में आकर उस नदी के किनारे बैठ जाता है जिससे कि किसी खाकी वर्दी की उस पर नजर न पड़े और फिर वह बड़े आराम से ताक लगाकए बंसी डालकर बैठा रहता है.....जरा सा बोझ मालूम पड़ने पर उसे लगता है कि.....फँसी मछली और होठों पर खुद ही दिल को समझाने के लिए कह उठता है.....आई......आ ..ई.... फँसी मछली, और धी..रे,..धी.....रे वह काँटा

ऊपर खींचता है और जब काँटा नदी में फँसे पत्थरों के ढेर से निकलकर अँगूठा बता देता है तो "विरोध" तिलमिला उठता है......

"क्या है यार ये मछलियाँ भी ! आती ही नहीं हैं...... बड़ी चालाक हैं......"

विरोध काँटा निकालता है, फिर से आटा काँटे के सिरे पर लगाता है और दूने उत्साह से काँटा पानी में दूर तक डालता है......सोचता है "इस बार तो जरूर फँसना चाहिये"...... और उस काँटे को एक मोटे पत्थर से बाँधकर दूसरा काँटा तैयार करता है और थोड़ी जगह छोड़कर फासले पर दूसरा काँटा डालता है और फिर थोड़े फासले पर तीसरा ....और इस तरह कहता जाता है कि किसी न किसी में तो जरूर ही...... और फिर एक-एक करके लौटते, घूमते फिरते हरेक को हिलाकर देखता है "किसी ने तीर मारा या नहीं" । और जब किसी काँटे के नीचे पानी में हलचल होती है तो पहले को छोड़-कर उसके पास भागता है......मारा......फँसी .... और पत्थर से उसे अलग कर बड़ी अदा से डोर समेटता है...... मानो उस जैसा होशियार कोई मछलीमार ही नहीं और वह इतना होशि-यार है कि मछली पकड़ना उसके बस की बात ही नहीं है मगर शौक शौक है। वह किसी बुरे इरादे से मछली नहीं पकड़ता । पकड़ता है बस इसलिए कि उसे मछलियाँ अच्छी लगती हैं, वह देखता है कि मछलियों की उपमा आँखों से दी जाती है, वह सही है कि नहीं । फिर वह उठता है सही तो होगी ही—.... आँखें भी तो चंचल होती हैं, कैसी इधर-उधर तैरती हैं...... कैसी चालाक होती हैं बिना बोले ही बात कर लेती हैं । बिहारी कवि झूठा थोड़े ही था......"भरे मौन में करत है नैनन ही सों

बातें......अहा ! वाह प्यारे बिहारीजी क्या लाख रुपये की बात कही है.......!

मछली ऐ मछली !

नहीं सुनती.......

मछलिएँ ओ मछलिएँ........

तुम भी नहीं सुनती........कोई नहीं सुनती........तो अच्छा यह बताओ तुम आँखों जैसी हो क्या........?

और ढेर सारी मछलियाँ ऊपर आ गई मानों उन्होंने हामी भरने को पानी की ऊपरी सतह छुई हो........

आई........आई....... ढेर सारी मछलियाँ और विरोध एकदम उछल पड़ा.......सारी मछलियाँ पानी में फिर घुस गई........ और केवल रह गया.......पानी। विरोध देखता रहा........ मानों नाटक का एक दृश्य समाप्त हो गया हो और दर्शक अब दूसरे दृश्य की प्रतीक्षा कर रहे हों.......। विरोध की बात अधूरी थी उससे रहा नहीं गया उसने फिर आवाज लगाई.......

मछलियो......ओ.......मछलियो.......!

कोई मछली ऊपर नहीं आई........

विरोध चिढ़ गया.......कम्बख्त........

अच्छा तो फिर क्या आँखें तुम जैसी हैं........!

.... और फिर ढेर सारी मछलियाँ ऊपर आ गई।

इतने में, कोई काँटा हिला और विरोध ने कहा शाबाश ! तू होशियार है......और उसने फिर डोर लपेटना शुरू कर दी। थोड़ी डोर लपेटी तो लगा कोई बड़ी मछली आई है पकड़ में....

इतनी भारी.......!

हाँ-हाँ ! मछलियाँ भारी भी तो होती हैं.......

मछलियाँ तो कई मन की होती हैं······कई मन····· व्हेल मछली, शार्क मछली······

तो फिर मछलियाँ जैसी आँखें कैसे हुईं·····गलत सब गलत·····इतनी बड़ी मछली और इतनी-सी आँखें गलत······ एकदम गलत······

पर ठीक है······छोटी मछली जैसी आँखें और बड़ी मछली जैसी लड़की······

इसका मतलब बड़ी मछली में छोटी मछली, मतलब मछली में मछली······हि······ही······ही······मछली में मछली······ खूब······मछली में मछली······

और इतने में एक हवा के झोंके से पानी लहरा उठा······ काँटे हिल गए मगर विरोध हँसता रहा·····और उसके होंठ फुसफुसाते रहे·····छोटी मछली आँखें·····बड़ी मछली लड़की······

छोटी मछली······बड़ी मछली······

छोटी ····बड़ी····

छो·····ब······

और फिर उसने एक काँटा जोर से पानी में दे मारा······ देखता हूँ साली कैसे पकड़ में नहीं आती है······मेरी बात सुनने तो ऊपर आ जाती है और यूं एक नहीं आती······

दरअसल विरोधाभास पूरा विरोधाभास है । लोगों के पास एक काँटा होता है और उसी से मछलियाँ पकड़ कर घर पहुँच जाते हैं। उसके पास पूरे छः काँटे हैं मगर······

उसके काँटे काँटे नहीं हैं······वह मछलियाँ मारना नहीं चाहता जिन्दी पकड़ना चाहता है । और जिंदी पकड़ कर उन्हें घर ले जाना चाहता है। वहाँ अपने घर में शीशों के बने छोटे-

छोटे हौजों में उन्हें सजाकर रखना चाहता है……उन्हें घंटों बैठे-बैठे देखना चाहता है……

मछलियाँ तैरती रहती हैं पानी में……

वह उन तैरती मछलियों को देखना चाहता है……चौबीसों घंटे मछलियाँ किस तरह तैरती हैं……कभी भी आराम नहीं करतीं…… क्या तैरते-तैरते ही नींद निकाल लेती हैं……और मछलियाँ आखिर मछलियाँ हैं…… मछलियाँ यानी कि आँखें… आँखें ही आँखें……और वह उनकी चंचलता को अपने सामने रखना चाहता है।

वह मछलियाँ खाता नहीं। खानी ही होतीं तो फिर वह मछली मार्केट से न ले आता और फिर भूले भटके कभी उसकी गली में मछिहारिन एक टोकरी में मछलियाँ रखे बेचने भी तो आती हैं। वह कई बार उसे देख चुका है । दूर से ही उसको बदबू आ जाती है……।

वह मछलीवाली एक बार दरवाजे पर खड़े, विरोध से पूछ ही बैठी, चाहिए बाबू……

विरोध जवाब के बजाय उसे ऊपर से नीचे तक देखता रहा…… उसने रुककर फिर पूछा……बाबूजी चाहिए……

हुँ……

नहीं……

और जब मछलीवाली आगे बढ़ गई तो विरोध ने आवाज लगाई ऐ मछलीवाली……

दस कदम जाकर वह फिर लौट आई और टोकरी उतारती इससे पहले ही विरोध पूछ बैठा……

तू ये मछलियाँ कहाँ से लाती है ?

तू खुद पकड़ती है न ?

तू कैसे पकड़ती है इतनी मछलियाँ ?

बाबूजी अपने धंधे की बात कोई नहीं बताता......मच्छा लेनी हो तो ......।

विरोध ने फिर ऊपर से नीचे तक देखा। मछलीवाली बड़ी ही खूबसूरत थी। महाराष्ट्रियन थी वो। और उसी तरीके से साड़ी पहन रखी थी। साड़ी हरे रंग की थी पर उसके गोरे चिट्टे रंग पर खिल रही थी...। ब्लाउज उसका काफी ऊँचा था। दर-असल वह कंचुकी थी जो सिर्फ आगे ही आगे के अंगों को ढँके हुए थी। पीछे से कमर पूरी खुली थी। कंचुकी कसकर बँधी हुई थी और उरोज तने हुए थे। साड़ी माथे पर नहीं थी इसलिए उसकी लंबी वैणी जो गोल-गोल आँटे देकर जूड़े जैसी बना दी गई थी......अच्छी दिख रही थी। बाल काले थे एकदम और सबसे ज्यादा आकर्षक उसकी मस्त आँखें थीं.........चंचल......चमचमाती......

रूप तो था मगर रूप का क्या। रूप सब में होता है। उसमें कुछ और भी था जिसमें विरोध उलझ गया था। वह आकर्षक थी......बड़ी ही नमकीन......

विरोध सोचने लगा यह इस तरह मछली बेचने क्यों आती है। उसे नहीं आना चाहिए......उसे कितने मनचले...मनजले ...घूर-घूर कर देखते होंगे। मछली खरीदने के बहाने उससे बातें करते होंगे.........छटांक भर मछली के लिए उसे परेशान करते होंगे......भाव ताव करते होंगे... सांस से उभरती उसकी छाती पर नजरें टिकाकर उसकी चढ़ती उमर की धड़कनों को गिनते होंगे। उसको गोरी-गोरी कलाइयों को कभी मछली छांटते-छांटते छू भी लेते होंगे......खैर छूना बुराई नहीं मगर फिर भी छूते तो होंगे ही......और फिर इनसे

मछलियाँ वो ही लोग तो खरीदते हैं जो थके माँदे आते हैं और किसी तरह अपना जी बहलाना चाहते हैं……। सब थोड़े ही अच्छे होते हैं। परन्तु इसको कुछ समझ नहीं आता होगा………भोली भी तो है……

नहीं………नहीं………भोली कैसे हो सकती है! भोली होती तो इतनी मछलियाँ कैसे पकड़ती………मछलियाँ भी भोली कहाँ होती हैं वो तो फँस जाती हैं और फिर बड़ी मछलियाँ तोबा……ये तो अपने स्वास्थ्य के लिए फँसती हैं………आँखें तो अपने लिए देखती हैं……। उनको देखने से सुख मिलता है इसलिए देखती हैं।

तो क्या यह भी कहीं फँस जायगी……

वो फँसी……

विरोध ने एक जोर के झटके से जो काँटा खींचा तो आधी बेंत हाथ में और आधी डोर समेत पानी में………

वाह खूब! काँटा तो मच्छी लेकर नहीं आया मगर मच्छी काँटा जरूर ले गई। वो नहीं उलझेगी। बड़ी ही चालाक है। चालाक तो है ही जभी तो मुझे मच्छी पकड़ना नहीं बताया। सोचती होगी मैं भी कहीं मच्छी बेचना शुरू न नहीं कर दूँ। हुँह……। बुद्धू! मैं कोई उस जैसा मछहरा हूँ………

मैं तो मछलियाँ पकड़ता हूँ अपने शौक के लिए। अगर पकड़ना ही होती तो तीखे काँटे लेकर न आता……और फिर ढेर सारी मछलियाँ पकड़कर ले जाता घर और जब वह मच्छी बेचने आती तो उसे बताता……और कहता तुझे चाहिए तो ले जा……जा ले जा पैसे भी नहीं लूँगा……

आखिर पैसे क्यूँ लेता मेरा कोई धंधा थोड़े ही है और फिर कितनेक पैसे आते………उससे मेरा होता भी क्या……और उससे क्या पैसे लेता………कितनी खूबसूरत है? यूँ ही दे देता।

बात तो बड़ी अच्छी करती है गर्दन घुमाती हुई बड़ी अदा से कहती है.......मच्छी चाहिए बाबू.........बा....बू.......

पर वो तो सबसे ऐसे ही कहती होगी बाबू। सबसे ऐसे ही बात करती होगी। कोई मुझे ही थोड़े ही.......उसे तो मछलियाँ बेचनी हैं। मीठी-मीठी बातें करके टिका ही देती होगी। सबको। और लोग भी उसके रूप पर मर जाते होंगे.......उस दिन की ही तो बात है उस चौक पर इसी से तो खरीदता था मच्छी वो काला 'बाबू'.......

भाव करता था। पूछता था कैसे देती हो ?

तीन रुपये.......

तीन.......! दो लेगी बोल.......

तुझसे ढाई ले लूँगी.......बोल.......

और तीन मच्छिलयाँ बड़ी मुश्किल से तुलवाकर ले गया था वो भी यह सोचकर कि 'उसको ढाई में दी हैं।'

और आस-पास खड़े दो-चार मुर्गे अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर देखते थे.......

है तो माल प्यारे।

पर हाथ नहीं आएगी यूँ ही.......

हाथ नहीं आएगी ! अरे वह काँटा डालूंगा कि तड़पती चली आएगी और अपनी भुजाओं की मछलियाँ को देखते हुए हाथ फेरने लगा था।

और फिर तीसरे ने जो आँख मिचकाई तो मछलीवाली उबल पड़ी थी और इतनी तेज जबान से बोली थी कि और तो सब गायब हो गया बस यही समय में आया "ऐसी फेंक कर जूती मारूँगी कि मरे की आँखें फूट जाएंगी।"

वह इसी तरह इधर-रउध गली फिरती होगी और दो-चारों को बातों से जूती मारती हुई आगे निकल जाती होगी।

उसकी बातें सुनकर फिर आँखें मटकाई बोलते हुए "जूती तो फेंक छोड़ूँगा नहीं........"

दुनिया में लुच्चों की क्या कमी। अपनी हाथ की मछली ऊपर नीचे करते हुए बोला—अब तक किसने छोड़ा होगा।

विरोध ने यहाँ तक आकर फिर अपना दूसरा काँटा संभाला और अपनी आस्तीनें चढ़ाकर बढ़े इतमीनान से पानी में काँटा डाला—और काँटा धीरे-धीरे छोड़ते हुए कहने लगा—"छोड़ा हो या न छोड़ा हो मुझे क्या ?"

कोई एक छोड़ेगा तो क्या इन मछलियों को कोई नहीं पकड़ेगा। कोई दूसरा नहीं तो तीसरा आकर ले जाएगा। आखिर एक न एक तो ले ही जाएगा पकड़कर.........मेरे पकड़ में नहीं आई तो क्या........

लेकिन ये भी कोई बात है। साले सब बदमाश थे। भूखे ! इसीलिए तो चौरास्ते पर बैठे रहते हैं। जो भी आया बातों के पटा के छोड़ ही देंगे। रास्ते चलतियों को हरामी चैन नहीं लेने देते....।

परन्तु ये निकलती ही क्यूँ हैं यूँ। और काँटे ऊपर नीचे करते हुए फिर कहना शुरू किया.........कल मिलेगी तो कहूँगा तू क्यों बेचती है मछलियाँ। लोग तुझे छेड़ते हैं फिर भी तू नहीं मानती। अब मत बेचा कर.......जा-जा घर बैठ।

ईश्वर ने मच्छियाँ बनाई ही इसलिए हैं। जलतुरई....क्या लोच है। कैसे तैरती हैं.......वाह।

विरोव को पूरे चार घंटे हो गए थे झक मारते मगर अभी तक उसकी किस्मत ने करवट नहीं बदली थी, उसे गुस्सा भी नहीं आया था। उसकी प्रकृति ही बड़ी अजीब है। उसे

जंगलों में नदी के किनारे पानी में बैठना अच्छा लगता है। और फिर थोड़ी देर भी नहीं बल्कि सुबह से शाम तक वह बैठे-बैठे बोर नहीं होता। यहाँ उसे बस कुछेक यही काम है। या तो काँटे घुमाएगा नहीं तो काँटे किसी पत्थर से बाँधकर किसी झाड़ के नीचे बैठ जाएगा और गुनगुनाएगा····लेट जाएगा और पुरानी घटनाओं को याद करके मुस्करा देगा·······खिलखिला पड़ेगा और उसकी हँसी वहीं आस-पास झाड़ियों में भटक जाएगी···· पत्थरों में खो जाएगी·······भूख लगेगी तो कुछ खा लेगा······· पानी पी लेगा और ज़ब सांझ पड़ जाएगी तो घूमता-घामता घर आ जाएगा।

वह यहाँ अक्सर आता है। और दिन भर में एक आध पकड़ लेता है मच्छी और अपनी विजय पर मुस्कराता चला जाता है। नहीं पकड़ में आती तो भी उदास नहीं होता।

अब तक कई बार विरोध उस मछियारिन से मिल चुका है। कई बार तो वह दरवाज़े पर खड़ा रहता है और वह उधर से देखती हुई निकल जाती है। और जानते हुए भी वह मच्छी नहीं खरीदता···पूछती जाती है···मच्छी लोगे 'बाबू'·······।

विरोध को बुरा भी नहीं लगता। उसे उसकी बोली अच्छी लगती है। वह केवल गर्दन हिला देता है····नहीं, और दूर तक जाती मछियारिन को देखता रहता है।

दूर जाकर कभी-कभी वह भी पीछे मुड़कर देख लेती है। विरोध उसको पीछे मुड़कर देखते हुए देखकर मुस्करा देता है और उसे लगता है कि वह भी कोई फिर···उसके उत्तर में मुस्कराई है और जब वह जब गली के मोड़ पर ओझल हो जाती है तो विरोध अन्दर चला जाता है और अपने शो रूम में पड़ी हुई काँच की छोटी·छोटी हौजों में तैरती हुई मछलियाँ देखने लगता है·······

पचासों बार आमने-सामने हुए हैं इसलिए दोनों एक दूसरे को पहचानते हैं। विरोध जान गया है कि यह मछुओं के वंश की है। और मछली बेचकर कुछ पैसा कमाती है। विरोध यह भी अनुमान लगा पाया है कि वह क्वाँरी है। न माथे पर बिंदी लगाती है न माँग में सिंदूर और न ही सूरत से शादीशुदा लगती है। है हिम्मतवाली। जबान तो कभी-कभी बड़ी ही तेज चलाती है पर अक्सर बड़ी ही मीठी बोलती है…न बोले तो माल कैसे बिके। गली में आती है तो एक आवाज लगाती है…मच्छी ले लो…। टोकनी में वह छोटी-सी तराजू भी रखती है और तोलने के लिए एक किलो तक के छोटे-बड़े बाट और काटने के लिए एक तीखा-चाकू है। है बड़ी होशियार। तोलकर देती है और गिनकर लेती है। और कभी कोई कहता है थोड़ी और डाल देना कोई सोना थोड़े ही है……तो तपाक से आँखें निकाल कर उत्तर देती है…सोना नहीं तो मिट्टी भी नहीं है। बाबू चीज है……खायगा तो खुश हो जायगा। देख कैसी ताजी हैं बरफ में रखी हुई थीं।

विरोध ने उसे खूब देखा……अच्छी तरह देखा। कौन-से कपड़ों में वह अच्छी लगती है उसे यह भी मालूम है। वह जब घाघरे पर साड़ी पहनती है तो बड़ी हो अच्छी लगती है। तब वह लम्बी चोटी करती है और पीछे कोई अच्छा-सा फूँदोंवाला चुटीला गूँथ लेती है। दो-चार बालों के गुच्छे मुँह पर उड़ते रहते हैं। लेकिन वह ऐसी ड्रेस कभी कबाक पहनती है। लांग डालकर साड़ी पहनने में वह तेज चल सकती है…हाथों में उसके चूड़ियाँ रहती हैं काँच की गहरे हरे और लाल रंग की। एक हाथ की हरी और दूसरी में लाल उसे गहरा रंग ही ओपता है। गोरे रंग पर यही अच्छा लगता है। पैरों में कुछ नहीं पहनती……कोई कड़े नहीं कोई बिछुएँ नहीं…।

उसने भी विरोध को देखा बड़ी अच्छी कोठी में रहता है, वो तो झोंपड़ों में रहती है और वह भी गंदी बस्तियों में। करे भी क्या। देखने में विरोध अच्छा है·····तभी तो वह इस रास्ते जरूर निकलती है और छेड़ती जाती है·····"चाहिए बाबू"। विरोध का रंग गोरा नहीं—काला भी नहीं—मन ही मन सोचती है साँवले हैं बाबू और खुद ही कह देती है—मर्द गोरे अच्छे नहीं लगते। बाबू पढ़ा-लिखा है—अच्छा लगता है···। रंगीला भी दिखता है·····पर क्या मच्छी तो खरीदता ही नहीं····· हिंदू होगा शायद·····।

जब इस तरह जान पहचान हो जाती है तो फिर पहचान के लिए नाम जानने की कई बार कोई इच्छा ही नहीं उठती। दोनों के बीच में एक दूसरे को देखकर पहचान हो गई थी और आँखों ही आँखों में यह जान लिया था कि वह बाबू है और वह मछियारिन। दोनों ने एक दूसरे का कभी नाम नहीं पूछा।

लेकिन विरोध उससे मछली पकड़ने की तरकीब पूछना चाहता है। किसी दूसरे से नहीं उसी से·····और अपनी इच्छा भी वह बता देना चाहता है। और मौका पड़े तो वह अपनी घर की मछलियाँ भी बता देना चाहता है·····।

वह सोचते-सोचते पास के झाड़ के तने से जा टिका और गुनगुनाने लगा। यकायक उसकी आँखें लग गई हवा की ठंडी लहरों के थपेड़े खाकर·····

दिवा स्वप्न भी कभी सच्चे होते हैं·····।

सपने आखिर हमारी स्मृतियाँ·····सोची हुई बातें·····बीती या होने वाली घटनाएं भी तो होती हैं·····सच्चे भी हो सकते हैं·····गलत भी·····। उसने आँख लगने से पहले सोचा था मछियारिन से

मिलूंगा और फिर पूछूंगा……उसे मना भी करूँगा कि वह मछलियाँ न बेचे……।

और यही वह नींद लगने पर देखता रहा……। वह मछियारिन से मिला……।

'अरे बाबू ! तुम यहाँ क्या करते हो ?'

विरोध की आँखें खुल गईं……सामने वही मछियारिन थी…… घाघरी पहने हुए उस पर साड़ी, खिलता रूप रंग……वैसी की वैसी ड्रेस में……हुँ……तू……।

विरोध ने सोचा कहीं सपना तो नहीं देख रहा है……।

उसने आँखें अपने हाथों से मलीं और फिर देखा……।

सपना तो उसने अभी देखा था……अब थोड़े ही देख रहा है……। अब तो हकीकत है। विरोध ने कहा तू……तू यहाँ कैसे ?

हाँ बाबूजी मैं……मैं 'शमिया' मछली वाली……आप यहाँ क्यूँ बाबू ?

विरोध उठ खड़ा हुआ……मैं तो……मैं तो मच्छी पकडने आया था……देख वो देख वो काँटे डाल रखे हैं……मैं है ना मैं जिदी मछली पकड़ना चाहता हूँ……। काँच की पेटियों में रखूँगा……तरह-तरह की मछलियाँ……छोटी-बड़ी……रंग-रंगीली।

पर बाबू काँटे में तो वो मर जायेंगी……नहीं काँटे तेज नहीं हैं……सुबह से अभी तक एक भी नहीं फँसी……पर तू तो…… क्या तू भी यहीं से मच्छी पकड़ती है……

नहीं बाबू "रोज जगह बदलती हूँ……कभी कहीं से कभी कहीं से……। मैं तो शौक से मच्छियाँ पकड़ता हूँ जिदी-जिदी मछलियाँ……लड़की जैसी चंचल मछलियाँ।

नहीं बाबू, मछली जैसी चंचल लड़कियाँ……।

हां बड़ी मछली लड़की छोटी मछली आँखें……।

तो क्या बाबू अभी तक एक भी मछली पकड़ में नहीं आई···

ऊं हूँ·····इसीलिए तो तुझसे पूछता था मछलियाँ कैसे पकड़ते हैं····।

बाबू इन काँटों से मछलियाँ नहीं पकड़ी जाती । और जो आएगी वो भी मरी हुई तड़पती···मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल चाहिए जाल····।

जाल····।

हाँ बाबू जाल ! बिना जाल के कोई मछली नहीं पकड़ में आती। बड़ी चालाक होती हैं मछलियाँ·· चुटकियों में पानी पिला जाती हैं ··।

आ, इधर आ बाबू····देख मैं बताती हूँ कैसे पकड़ते हैं मछलियाँ···और विरोध का हाथ पकड़ कर किनारे तक ले गई····हाथ छोड़ा····पैरों से चप्पल उतारी और लहंगे को जांघों तक चढ़ाकर लांग दे डाली···और साड़ी को कमर में बाँध लिया···।

विरोध देखता रहा····अब तक उसने उसका सलोना मुँह देखा था····गोरी बाहुएं देखी थीं····बंद उरोज देखे थे····और आज वह मछली-सी नख गौरी पिंडलियाँ देखता ही रहा····आधी जांघों तक उसके सुंदर पैर उसकी आँखों को खींचते रहे····

शमियाँ समझ गई। क्या देखते हो बाबू····।

कुछ नहीं····सोचता था मछली पकड़ने को जाल चाहिए···है ना····।

झूठ बाबू····सोचता था या देखता था···।

नहीं सोचता था जाल····।

हां बाबू जाल···और देख अब····।

उसने किनारे से जाल उठाया और पानी में उतर गई....घुटनों के ऊपर तक पानी आ गया था....

विरोध देखता रहा....।

शमिया ने थोड़े से अनाज के दाने डाले मगर दो-चार मछलियाँ ही आकर रह गईं....

यह क्या ...विरोध ने पूछा....।

बाबू मछलियों को ऊपर बुला रही हूँ....इसके बिना थोड़े ही आती हैं....। लालच के बिना कौन आता है बाबू....। लालच देकर ही तो फँसाया जाता है बाबू....

शमिया दो-चार फुट हटकर थोड़ी और अन्दर गई....अब उसकी लगभग पूरी जाँघें पानी में डूब चुकी थीं....काँच-से पानी में थोड़ी-थोड़ी उसकी सफेद पिंडलियाँ और दोनों जाँघें दिखाई दे रही थीं....विरोध की आँखें वहीं ऊपर नीचे हो रही थीं।

वह सोचने लगा हाँ ठीक है...लालच तो देना ही पड़ता है....रूप का लालच...धन का लालच...दुनिया आखिर लालच ही तो है...आँखें भी तो लालची हैं...सबकी आँखें लालची हैं...सब लालची हैं...छोटी मछलियाँ बड़ी मछलियाँ...अँखियाँ...लड़कियाँ...।

शमिया ने फिर मुठी भर अनाज के दाने फेंके .और ढेर सारी मछलियाँ ऊपर उछलती-मचलती आ गईं...शमिया ने झट से जाल दोनों हाथों से फैलाकर पानी में डाला और ऊपर खींच लिया......।

विरोध...आह...मछलियाँ...ढेर सारी मछलियाँ हैं पानी में......।

पानी में नहीं बाबू जाल में और वह जाल को खींच किनारे ले आई.....

देख बाबू, है ना मछलियाँ ही मछलियाँ…कितनी मछलियाँ हैं…फँसी न जाल में…जिन्दी मछलियाँ…।

विरोध ने देखा…शमिया मुस्करा रही थी…।

जाल था और जाल में मछलियाँ ही मछलियाँ।

आँखें ही आँखें…।

मछलियाँ ही मछलियाँ।